वनस्पति वाणी

सितम्बर, 2023 अंक 32

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

LiFE
Lifestyle for Environment

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, सॉल्ट लेक सिटी, कोलकाता -700 064 द्वारा प्रकाशित

ISSN : 09758-4342

वनस्पति वाणी

सितम्बर 2023 अंक 32

"प्रकृति यें कोनो शिल्पीर कार्यकौशलीर चेयें सुन्दर।
प्रकृतिर सौन्दर्य रक्षा ও संरक्षण आमादेर कर्तव्य।।"

(तात्पर्य : प्रकृति किसी भी चित्रकार की चित्रकारी से भी कहीं अधिक सुंदर है।
प्रकृति की सुंदरता की रक्षा और संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है।)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2023

इस प्रकाशन का कोई भी अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/ रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलैक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

संरक्षण एवं प्रधान सम्पादक
ए.ए. माओ

सम्पादक मण्डल
दिनेश कुमार अग्रवाला
जीवन सिंह जलाल
श्याम किशोर महतो

सहयोग
कैलाश प्रसाद कुशवाहा

डिजाइन
अंचल विश्वास

ISSN : 09758-4342

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, तृतीय एम.एस.ओ. भवन, एफ विंग, डी एफ ब्लॉक, सेक्टर -1, साल्ट लेक सिटी कोलकाता -7000 064 द्वारा प्रकाशित एवं कलकत्ता रेप्रो ग्राफिक्स, 36/8 बी, साहित्य परिषद स्ट्रीट, कोलकाता 700006 द्वारा मुद्रित।

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में राजभाषा हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग दिया है।

डॉ. ए.ए. माओ
निदेशक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

निदेशक की कलम से

हमारा पर्यावरण धरती पर स्वस्थ जीवन को अस्तित्व में रखने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिर भी हमारा पर्यावरण दिन-प्रतिदिन मानव निर्मित तकनीक और आधुनिक युग के आधुनिकीकरण की वजह से नष्ट होता जा रहा है। विश्वभर में पर्यावरणीय समस्याएं जैसे प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन आदि मनुष्य को अपनी जीवनशैली के बारे में पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित कर रही है। सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक और बौद्धिक रूप से पर्यावरण प्रदूषण हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण वातावरण में विभिन्न प्रकार की बीमारीयों को जन्म देता है, जिसे व्यक्ति जीवन भर झेलता रहता है। यह किसी समुदाय या शहर की समस्या नहीं है बल्कि वैश्विक समस्या है तथा इसका निदान किसी एक व्यक्ति के प्रयास करने से संभव नहीं होगा। अगर इसका निवारण पूर्ण तरीके से नहीं किया गया तो एक दिन पृथ्वी ग्रह पर जीवन का अस्तित्व नहीं रहेगा। इसलिए पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण प्रबंधन वर्तमान दौर की नितांत आवश्यकताएं हैं। आज सबसे ज्यादा जरूरी है कि पर्यावरण संकट के मुद्दे पर आम जनता और सुधी पाठक जागरूक बने। पेड़-पौधे जीवंत शक्ति से भरपूर प्रकृति के ऐसे अनुपम उपहार हैं जो सभी को प्राणवायु ऑक्सीजन तो देते ही हैं,पर्यावरण को भी शुद्ध और संतुलित रखते हैं। यही वजह है कि भारत में पेड़-पौधों को प्राचीन काल से ही पूजा जाता रहा है। पेड़-पौधों के बिना अधिकांश जीवों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का शीर्ष वर्गिकी शोध संस्थान अपनी स्थापना के बाद से ही भारत के दूरस्थ से दूरस्थ इलाकों के पेड़-पौधों से संबंधित अनोखे लोक वानस्पतिक ज्ञान को संकलित और अद्यतन करके राष्ट्र की सेवा करता रहा है। विभाग द्वारा वार्षिकी के रूप में प्रकाशित 'वनस्पति वाणी' भारत की समृद्ध वनस्पति विविधता संबंधी समेकित ज्ञान और राजभाषा नीति के कार्यान्वयन को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास है।

'वनस्पति वाणी' का 32वां अंक समस्त देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में 'वनस्पति विविधता', 'लोक वनस्पति विज्ञान', 'चिर-परिचित वनस्पति' और 'समसामयिक परिदृश्य' शीर्षकों के अंतर्गत कुल 17 लेख, 'काव्यांजलि' शीर्षक के अंतर्गत 01 कविता तथा 'पटाक्षेप' शीर्षक के अंतर्गत राजभाषा कार्यान्वयन और जन जागरूकता कार्यक्रम संबंधी कुल 07 आलेख सम्मिलित किए गए हैं। इस अंक में प्रयुक्त शब्दों और वैज्ञानिक नामों को अधिकाधिक मानकीकृत रूप में रखने का प्रयास किया गया है। मुझे पूरा विश्वास है कि पिछले अंकों की तरह यह अंक भी वर्गिकी वैज्ञानिकों और आम पाठकगण के लिए रोचक और ज्ञानवर्द्धक होगा।

आवरण चित्र

दक्षिण अंडमान के महात्मा गांधी समुद्री राष्ट्रीय उद्यान में उगने वाली *पंडाना* प्रजाति का एक दृश्य
चित्रः दिनेश कुमार अग्रवाला, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1. मशरूम को पहचानने के लिए "क्या करें और क्या न करें" पर संक्षिप्त विश्लेषण — द्युतिपर्णा चक्रवर्ती, विजय, देबाला टुडू व हरमिन्दर सिंह — 1
2. कूट अर्थस्टार कवक *ऐस्ट्रायस एशियाटिकस* और *ऐस्ट्रायस अडरेटस* का विश्लेषण — मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम, विनीत विशाल, सोमनाथ सिंह मुंडा, गीतांजलि सिंह, शालिनी लाल, अनिकेत घोष व अरविंद परिहार — 4
3. आर्किड्स - वानस्पतिक रत्न — एम. यू. शरीफ़, के. ऐ. सुजाना व एस. पी. पाण्डा — 10

लोक वनस्पति विज्ञान

4. वेद और पर्यावरण — कैलाश प्रसाद कुशवाहा — 13
5. खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) - *बैकौरिया रैमिफ्लोरा* लाउर. (फाइलैन्थेसी) — पंकज अरविंद ढोले, लाल जी सिंह, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी, महादेवकुमार एस. व प्रकाश होरो — 14
6. कोयम्बत्तूर जिले और उसके आसपास के इलाकों में भोजन और औषधि के रूप में उपयोग होने वाले सामान्य जंगली पौधे — एम. आनंद लक्ष्मी, अरुमुगम एस., मेहला देवी आर. व नित्या एस.पी — 15
7. प्राकृतिक गोंद और राल : एक बहुपयोगी बहुलक — देबष्मिता दत्ता प्रमाणिक, सुश्रेया पाल व मानस भौमिक — 22
8. गृह वाटिका (होम गार्डेन) : लोक स्वास्थ्य, वित्तीय विकास और सामाजिक उन्नति का स्रोत — विजय व छाया देओरी — 26
9. *श्लीचेरा ओलियोसा* (कुसुम) के बीजों से पारंपरिक तरीके से तेल प्राप्त करने की विधि — रंजना जामुदा व एल. रासिंगम — 28
10. अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह की बहुपयोगी वनस्पति नोनी (भारतीय शहतूत) : परिचय और संरक्षण — लाल जी सिंह, शिवलक्ष्मी, पंकज अरविंद ढोले, प्रकाश होरो, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी व महादेवकुमार एस. — 30

चिर परिचित वनस्पति

11. काफल : *मिरका एस्कुलेंटा* — हरमिन्दर सिंह, विजय, देबाला टुडू व एन. ऑडियो — 31
12. *डेल्फिनियम डेनुडेटम* (जदवार): पश्चिमी हिमालय का संकटग्रस्त औषधीय पौधा — भावना जोशी, गिरिराज सिंह पंवार व सुशील कुमार सिंह — 33

समसामयिक परिदृश्य

13. पादपालय (हर्बेरियम) : अभिलेख संग्रहालय और पुनरुद्धार व्यवस्था — एम. आनंद लक्ष्मी, आर. मणिकंदन, डबल्यू ऐरिसदासन व सार्थक सक्सेना — 36
14. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा का "प्रकृति पथ (नेचर ट्रेल)" : एक संक्षिप्त परिचय — विजय कुमार मासतकर, देवेन्द्र सिंह, एस.पी. पांडा, जे. स्वामी, प्रदीप कुमार कामिला, राहुलदेब बर्मन, रवि प्रसाद, बिष्णुचरण दे, तितिर साहा, आर. सरवानन, मनोज ई. हेम्ब्रम, ज़ीशान मज़हर, कंकन चक्रवर्ती व सत्यम दासगुप्ता — 40
15. स्वच्छ भारत मिशन — पेयजल एवं स्वच्छता विभाग, जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार — 43
16. समसामयिकी — भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हिन्दी अनुभाग — 46
17. भारत में ई-कुकिंग — कैलाश प्रसाद कुशवाहा — 49

अनुक्रमणिका

काव्यांजली

18. हिंदी: हमारी आशा — पेद्दि हरिकृष्णा — **51**

पटाक्षेप

19. वर्गिकी : सामान्य परिचय — अंचल बिश्वास — **52**

20. भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी कानूनों का क्रमिक विकास — नीलिमा ऐ. एम. — **54**

21. हिन्दी दिवस का वर्तमान परिप्रेक्ष्य — प्रेस विज्ञप्ति, राजभाषा विभाग, भारत सरकार — **57**

22. राजभाषा हिंदी का वैज्ञानिक और प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान — भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हिन्दी अनुभाग — **59**

23. राजभाषा हिंदी : एक विश्लेषण — भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हिन्दी अनुभाग — **62**

24. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग — भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हिन्दी अनुभाग — **64**

25. लेखकों के लिए निर्देश — राजभाषा अनुभाग / प्रकाशन अनुभाग — **69**

जन जागरुकता कार्यक्रम

26. गतिविधियां (सचित्र) — प्रकाशन अनुभाग — **70**

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 01-03 (2023)

मशरूम को पहचानने के लिए "क्या करें और क्या न करें" पर संक्षिप्त विश्लेषण

द्युतिपर्णा चक्रवर्ती, विजय, देबाला टुडू व हरमिन्दर सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

मशरूम कवक साम्राज्य के फाइलम बेसिडिओमाइकोटा और ऐस्कोमाइकोटा का प्रजनन भाग या 'फ्रूटबॉडी' हैं जिनसे मुख्य रूप से बीजाणु जनित होकर फैलाव करते हैं। इनका पारिस्थितिकी एवं आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। अधिकांशत: कवक लिग्नोसेल्यूलोसिक कृषि अपशिष्ट, उद्यान और जंगल के कूड़े पर उगते हैं। इस प्रकार ये खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल में संतुलन बनाए रखने के साथ-साथ अपशिष्ट प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए इन्हें उत्कृष्ट जैव अपघटक भी माना जाता है। कवक अपने तंतु और गोंद जैसे स्रावित रसायनों की मदद से मिट्टी के कटाव को भी रोकते हैं तथा साथ ही अपने बाह्य कवक मूल की सहभागिता से वनों में पौधों को जीवित रहने में भी सहायता प्रदान करते हैं। इसके अलावा, जंगली खाद्य मशरूम खाद्य प्रणालियों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप में लाभ प्रदान करने का एक विस्तृत तंत्र प्रदान करते हैं। प्राचीन काल से ही पूरे विश्व में भोजन के एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में मानव द्वारा मशरूम का उपयोग किया जा रहा है। विश्व की विशाल विविधता वाले देशों में से एक होने के कारण, भारत अपनी विशाल वनस्पतियों और जैव विविधता के साथ-साथ मशरूम विविधता में भी अत्यधिक समृद्ध है। इसके बावजूद, जंगली मशरूम सबसे कम अन्वेषित समूहों में से एक है, अत: इसे संरक्षित करने के लिए इसकी विविधता को प्रलेखित करने के प्रयासों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

मशरूम की पहचान क्यों और कैसे करें?

इसके शैक्षणिक और अनुसंधानिक मूल्य के अलावा, व्यावसायिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी मशरूम का उचित वर्गीकरण और अभिनिर्धारण बहुत महत्वपूर्ण है। *गैनोडर्मा ल्यूसिडम* (लाल रेशी मशरूम), *ओफियोकॉर्डिसेप्स साइनेंसिस* (कीड़ा-जड़ी कवक) आदि ऐसे 50 से अधिक औषधीय मशरूम हैं जो मानव हृदय और यकृत के स्वास्थ्य को मजबूत करने, समग्र ऊर्जा को बढ़ाने, अपने एंटीऑक्सीडेंट घटकों की सहायता से हमारे प्रतिरक्षा तंत्र की क्षमता को बढ़ाने में सक्षम हैं।

दूसरी ओर, कुछ जहरीले मशरूम जैसे *ऐमेनिटा फैलोइडस* गंभीर स्वास्थ्य संबंधी खतरे और यहां तक कि मौत का कारण भी बन सकते हैं। वर्षा ऋतु में पूरे भारतवर्ष से मशरूम विषाक्तता के कई मामले सामने आते हैं। इसका मुख्य कारण उपभोग से पहले जंगली मशरूम का सही तरीके से नहीं पहचान न होना है। जहां तक मौसमी मशरूम के अनुभवहीन शिकारियों की बात है, उनके लिए एक जैसी दिखने वाली मशरूम प्रजातियों के बारे में भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उचित पहचान होने से जीवन और मृत्यु के बीच अंतर हो सकता है। इसलिए जंगली मशरूम का उपभोग तब तक न करें जब तक कि आपने इसकी प्रामाणिकता की पहचान सही से न कर ली हो।

जंगली मशरूम इकट्ठा करने और उनकी पहचान करने का मूलभूत प्रोटोकॉल :

कवक गर्म लेकिन आर्द्र क्षेत्र में उगना पसंद करते हैं। मानसून के प्रारंभ में, आर्द्रता, तापमान तथा दिन के उजाले की लंबाई मशरूम के फ्रूटबॉडीज़ की झड़ी लगा देती है। ये समुद्र तल से लगभग 14 हजार फीट की ऊंचाई तक उष्णकटिबंधीय वर्षावन से लेकर अल्पाइन घास के मैदानों, मिश्रित चौड़ी पत्ती वाली जंगलों से लेकर शंकुधारी वनों में उग सकते हैं। बाह्य कवकमूल वाले मशरूम प्रजातियों के लिए मिश्रित वन (चौड़ी पत्ती वाले और शंकुधारी वन) विशिष्ट प्राकृतिक केंद्र हैं। पत्तियों के कूड़े, मृत लकड़ी के लट्ठों तथा घास के मैदानों वाला वनक्षेत्र अक्सर मृतजीवी प्रजातियों के लिए उपजाऊ प्राकृतवास प्रतीत होता है। कुछ परजीवी मशरूम जीवित पेड़ों के तनों पर भी उगते हैं। स्थूल कवक के सफलतापूर्वक संग्रह के लिए, किसी संग्रहकर्ता के पास कुछ मूलभूत सामान जैसे हवादार टोकरी, पेपर बैग, चाकू या खुदाई करने वाली मशीन, नोटबुक और पेन, कैमरा, जीपीएस यूनिट, सर्वेक्षण क्षेत्र का नक्शा और एक वन पथप्रदर्शक या एक स्थानीय व्यक्ति की सुविधा होनी चाहिए। मिट्टी से जुड़े हुए मशरूम को उसके किसी अग्र भाग को बिना तोड़े उसके आधार से खोदना चाहिए। लकड़ी पर उगने वाले मशरूम को या तो पूर्णरूप से एकत्र किया जा सकता है (यदि वह छोटी शाखा पर उग रहा हो) अन्यथा मशरूम को यथावत रखते हुए लकड़ी के अध:स्तर का एक पतला टुकड़ा काटा जा सकता है। मशरूम के संग्रह के दौरान परपोषी पौधे, वहां की वनस्पति और जीपीएस डेटा को नोट किया जाना चाहिए। संग्रह के बाद, अधिकतम संख्या में वर्गिकी संबंधी विशेषताओं को एकत्र करने के लिए मशरूम को स्थूल आकारिकी से चित्रित किया जाता है। आम तौर पर, मशरूम तीन स्थूल संरचनाओं से बने होते हैं, छत्र, पटलिका या छिद्रिल और छत्रिकावृंत।

1. फील्ड उपकरण; 2. संग्रह; 3. एकत्र किया गया कवक; 4. कवक के स्वरूप का वर्णन; 5. वच्छेदन; 6. सुखाना; 7. कवक के सूक्ष्म परीक्षम

छत्र : यह स्थूल कवक/मशरूम की एक टोपी जैसी संरचना है जो हाइमीनियम को सहारा देती है। छत्र के लिए आकार, परिमाण (व्यास), रंग, बनावट, सतह, किनारा और वयनोतक की सीमा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

पटलिका या छिद्रिल : पटलिका या छिद्रिल स्थूल कवक की हाइमीनियम (प्रजनन संरचना से युक्त एक सतह) संरचना है। पटलिका या छिद्रिल के लिए छत्रिकावृंत से जुड़ाव, रिक्ति, रंग, रंग परिवर्तन को दर्ज किया जाना चाहिए।

छत्रिकावृंत : यह स्थूल कवक की डंठल या तने जैसी संरचना है जो छत्र और पटलिका या छिद्रिल को सहारा प्रदान करती है। यहां भी परिमाण (लंबाई और चौड़ाई), आकार, बनावट, छत्र से जुड़ाव, वयनोतक सतह, मूल चरित्र, रंग ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

इसके अलावा स्वाद और गंध भी कई स्थूल कवकों के लिए महत्वपूर्ण हैं। वयनोतक का स्वाद जीभ की नोक से लेना चाहिए और तुरंत (5 सेकंड के भीतर) थूककर पानी से मुंह धो लेना चाहिए। हालांकि अनुभवहीन लोगों के लिए यह उचित नहीं है। कवक को हाथ से पकड़ने के बाद साबुन से हाथ को धोना पूरी तरह अनिवार्य है। विच्छेदित मशरूमों की स्केल के साथ फोटो खींची जानी चाहिए और उसके बाद उन्हें उचित लेबल के साथ सूखने के लिए रखा जाना चाहिए। लंबे समय तक संरक्षण के लिए मशरूमों को सुखाकर रखना सबसे अच्छा तरीका है। इन्हें धूप में सुखाना आसान और किफायती होता है। लेकिन मशरूमों का संग्रह विशेषत: वर्षा ऋतु के दौरान अधिक होता है, इसलिए इन्हें पूरी तरह से खिली हुई धूप में सुखाना संभव नहीं हो पाता है और इन्हें सुखाने के लिए बिजली के बल्ब या मिट्टी के तेल के स्टोव की सहायता से फील्ड ड्रायर का उपयोग किया जाता है।

संग्रह पूरा करके वापस आने के बाद, उन सभी सूखे मशरूम के नमूनों के सूक्ष्मदर्शी लक्षणों को निर्धारित करने के लिए माइक्रोस्कोप से अध्ययन किया जाता है। स्थूल और लघु कवकी दोनों प्रकार के लक्षण ही मशरूम की ठीक से पहचान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सूखे नमूनों से मुक्त हस्त अनुभाग बनाए जाएं और संधित माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे जाएं। छत्र और छत्रिकावृंत सतह जैसी विशेषताओं को कवक तंतु के परिमाण, आकार और व्यवस्था के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। पटलिकों या छिद्रिलों के माध्यम से अनुभाग हाइमीनियम परत का विवरण प्रदान करता है। इसमें तीन प्रकार की कोशिकाएं पाई जाती हैं : बैसीडिआ, बेसिडियोल या सीमांत कोशिकाएं और सिस्टिडिया। इन संरचनाओं का आकार, परिमाण, पदार्थ और रंग दर्ज किया जाना चाहिए। स्थूल कवक को चिह्नित करने के लिए बीजाणुओं की विशेषताएं बहुत महत्वपूर्ण हैं। बीजाणु माप पार्श्व दृश्य में तीस बीजाणुओं के आधार पर दर्ज किए जाते हैं। अलंकृत बीजाणुओं के मामले में, विभिन्न पैटर्न पर ध्यान दिया जाना चाहिए। शब्दावली और विस्तृत वर्गिकी लक्षण के लिए डेविड एल लार्जेंट की "हाउ टु आइडेंटिफाइ मशरूम्स टु जिनस : मैक्रोस्कोपिक एंड माइक्रोस्कोपिक फिचर्स, वॉल्यूम I से III" जैसी पुस्तक का अनुसरण कर सकते हैं।

कभी-कभी, एक जैसी दिखने वाली प्रजातियों को पृथक करने के लिए केवल आकृतिक लक्षणों का वर्णन ही पर्याप्त नहीं होता है। इन्हें ठीक से पहचानकर उचित वर्गीकरण श्रेणी में रखने के लिए आणविक लक्षणों के वर्णन की आवश्यकता भी होती है। उसके लिए, सूखे बेसिडियोमेटा से डीएनए का निष्कर्षण और प्रवर्धन किया जाता है। आम तौर पर, मशरूम प्रजातियों के मशरुम की वंशावली को निर्धारित करने के लिए इंटर्नल ट्रांसक्राइब्ड स्पेसर (आईटीएस) और बड़ी उप-इकाई राइबोसोमल आर आरएनए (एलएसयू) अनुक्रम डेटा पर आधारित वंशावली विश्लेषण किया जाता है।

निष्कर्ष: जंगली मशरूम खासकर ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में अक्सर हमारे दैनिक आहार में शामिल होते हैं। इसलिए इनकी सही पहचान हमेशा जीवन और मृत्यु के बीच महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होती है। लेकिन वास्तव में, इन मशरूमों की पहचान काफी कठिन है और इसके लिए बहुत अधिक प्रयासों की आवश्यकता होती है। फ़ील्ड डेटा की रिकॉर्डिंग, स्थूल और लघु आकृतिक लक्षणों की गहन जांच, वंशावली विश्लेषण करने के बाद संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण करके ही उचित पहचान सुनिश्चित की जा सकती है। एक बार नमूनों की पहचान हो जाने के बाद, आम लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए वैज्ञानिक समुदाय द्वारा शोध संचार के रूप में इनका प्रलेखीकरण किया जाना चाहिए। केवल आकृतिक विशेषताओं पर आधारित पहचान अक्सर मानव जाति के लिए खतरा पैदा करती है। इसलिए उपभोग किये जाने वाले जंगली मशरूम के लिए हमेशा सावधानी बरतनी चाहिए और यह सलाह दी जाती है कि जंगल में पाए जाने वाले किसी भी अज्ञात या संदिग्ध मशरूम का सेवन न करें।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 04-09 (2023)

कूट अर्थस्टार कवक *ऐस्ट्रायस एशियाटिकस* और *ऐस्ट्रायस अडरेटस* का विश्लेषण

[1] मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम, [2] विनीत विशाल, [3] सोमनाथ सिंह मुंडा, [3] गीतांजलि सिंह, [3] शालिनी लाल, [4] अनिकेत घोष व [5] अरविंद परिहार

[1] ए.जे.सी. बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा, पश्चिम बंगाल
[2] वनस्पति विज्ञान विभाग, बंगबासी संध्या महाविद्यालय, कोलकाता, पश्चिम बंगाल
[3] वनस्पति विज्ञान विभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड
[4] केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा, पश्चिम बंगाल
[5] ए.पी.आर.सी. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश

कवक पारिस्थितिकी और आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि एक ओर वे वनस्पतियों और प्राणियों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, वहीं दूसरी ओर मृत और सड़ने वाली वस्तुओं को पुनर्चक्रित भी कर सकते हैं। आजकल उनकी खोज और अन्वेषण विभिन्न उद्योगों के लिए भोजन, दवा और अन्य कच्चे माल की आपूर्ति हेतु की जा रही है। इसलिए ये नीति निर्माताओं, वनवासियों, शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और सबसे बढ़कर प्रकृति प्रेमियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो गए हैं। झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और छत्तीसगढ़ के साल वृक्ष *शोरिया रोबस्टा* बाहुल्य वनक्षेत्रों के जंगली खाद्य मशरूम/ वृहद्-कवक भोजन और आजीविका के मौसमी स्रोत हैं। यहां बरसात के मौसम में बहुतायत से एक खास प्रकार का बहुरूपी, आकर्षक और मौसमी जंगली खाद्य मशरूम पाया जाता है जिसे ऊंचे बाजार मूल्य वाला लजीज व्यंजन माना जाता है। तरुणावस्था में जमीन के अंदर छोटे से मध्यम, अनियमित गोले के आकार से परिपक्व होकर तारा की तरह मिट्टी की सतह पर प्रस्फुटित होकर जीवन-चक्र पूरा करनेवाले इस बहुरूपी जंगली खाद्य मशरूम को स्थानीय भाषा में 'पुटका' या 'रूगड़ा' कहा जाता है। रूगड़ा मशरूम अधोभूमिक रूप (हाइपोगियस) में छोटे आलू की तरह दिखते हैं।

पुटका या रूगड़ा सूक्ष्म और कोशीय संगठन के स्तर पर सरल जीव होते हैं जो कवक तंतुओं या हाइफ़ा से मिलकर बने होते हैं। अपने पोषण, आश्रय, वृद्धि, प्रजनन, प्रसार और ऊर्जा निर्भरता के लिए कवक, वनस्पति और प्राणी के साथ मिलकर लाभकारी या हानिकारक संबंध बनाते हैं जिसे क्रमश: परजीवी और सहजीवी संबंध के नाम से जाना जाता है। पुटका या रूगड़ा मशरूम साल वृक्ष के साथ में सहजीवी संबंध स्थापित कर लेता है। झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और छत्तीसगढ़ के साल वृक्ष बाहुल्य वनक्षेत्रों के कूट अर्थस्टार कवकों के वैज्ञानिक नाम *ऐस्ट्रायस एशियाटिकस* और *ऐस्ट्रायस अडरेटस* हैं। इन कवकों को बेसिडियोमाइकोटा संघ, एगैरिकोमाइसिटीज वर्ग, बोलेटेलस गण, डिप्लोसिस्टिडिएसी कुल के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। इन दोनों कूट अर्थस्टार मशरूमों का वर्णन सर्वप्रथम थाईलैंड के डिप्टेरोकार्प बाहुल्य वनों से वर्ष 2007 और 2004 में किया गया था। भारत में इन्हें वर्ष 2007 और 2004 में झारखंड राज्य से वर्णित किया गया जब संग्रहकर्ताओं ने अपने सर्वेक्षण के दौरान स्थानीय लोगों द्वारा इन कवकों का सेवन करते हुए पाया। उत्सुकतावश, जब इनके आकृतिक लक्षणों और आणविक जातिवृत्तीय आकलन की पड़ताल करने के उपरांत वर्गिकी संबंधी अध्ययन किए गए, तब भारत में इनके अस्तित्व के बारे में पता चला।

ऊंची भूमि वाले वनक्षेत्रों में रेतीली या लैटेराइट मिट्टी में उगने वाले कूट अर्थस्टार कवक तरुणावस्था में मिट्टी के ठीक नीचे विकसित होते हैं जबकि परिपक्वता के समय फलकाय मिट्टी को चीरकर सतह पर तारे जैसी संरचनाओं में प्रस्फुटित हो जाते हैं। जैविक विकास के अरबों वर्ष के कालक्रम में रूगड़ा ने साल वृक्ष के मूल परिवेश के साथ क्रमबद्ध रूप से उत्तरजीविता और अस्तित्व के लिए एक विशिष्ट बाह्य कवकमूल संबंध स्थापित किया है। अधिकांश कवक नमी प्रेमी होते हैं, इसलिए वे साल के निश्चित काल में ही दिखते हैं। मानसून के दौरान (जून से अगस्त तक), इन सभी जगहों पर 320 से 320 सेंटीमीटर के बीच पर्याप्त वर्षा होती है जो रूगड़ा के लिए बिल्कुल अनुकूल है। धूप के साथ 30–35 डिग्री सेल्सियस के आसपास का तापमान रूगड़ा की वृद्धि और अंकुरण के लिए आदर्श परिवेश बनाता है। साल वृक्ष विशेष रूप से रूगड़ा को नमी प्रदान करते हैं और आर्द्र वातावरण, घनी छत्रछाया, रेतीली लैटेराइट मिट्टी और क्षयकारी कार्बनिक पदार्थ जैसे पत्तियों के कूड़े-कचरे आदि रूगड़ा के अंकुरण और वृद्धि को बढ़ावा देते हैं।

समाज के अस्तित्व, विकास और भविष्य की रणनीति बनाने के लिए अपने परिवेश के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त के लिए,

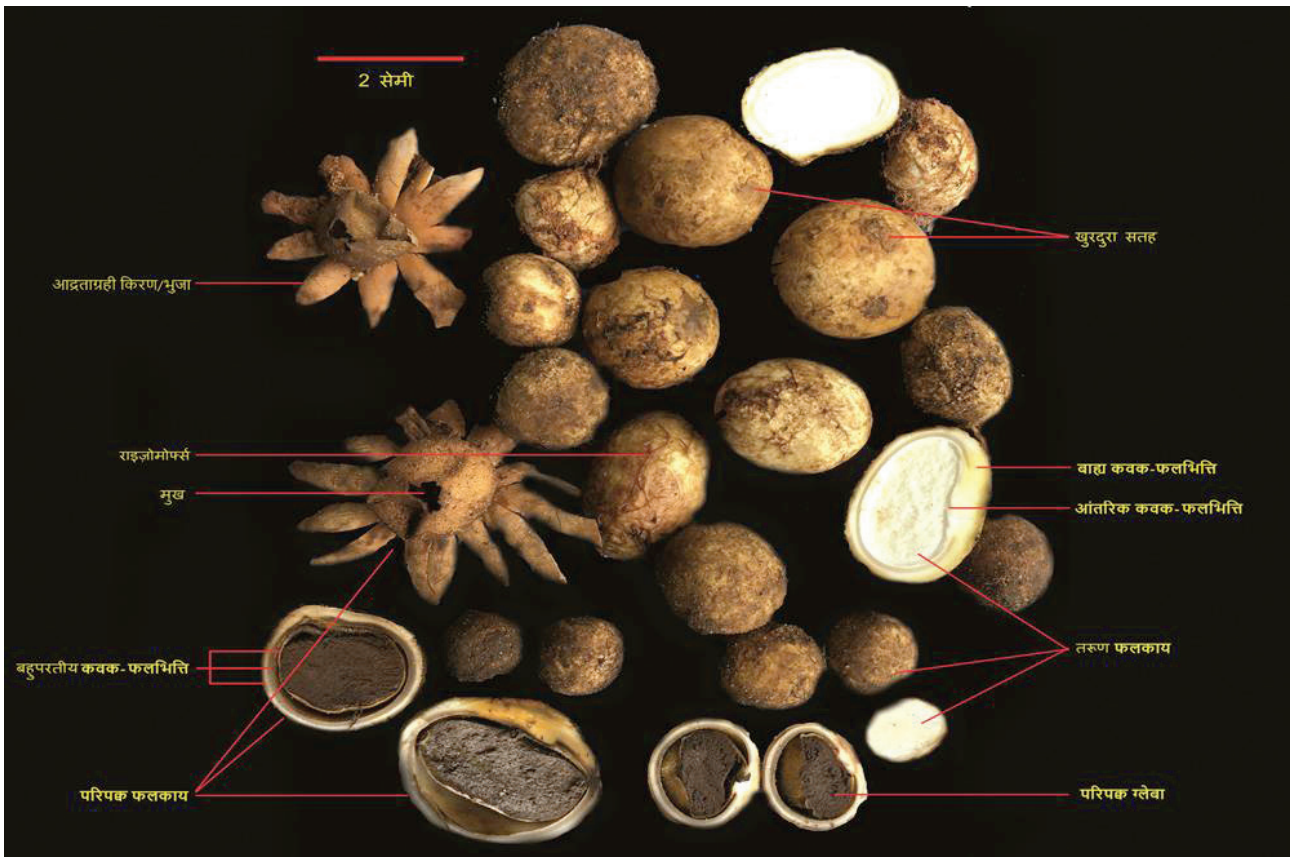

चित्र 1. भारतीय *ऐस्ट्रायस* प्रजाति के फलकाय का नामांकित चित्र

सर्वेक्षण करना मनुष्य का अभिन्न व्यवहार है। इसलिए वनों और इसके घटकों जैसे वनस्पतियों, जीवों और कवकों का सर्वेक्षण मानव के विकास के बाद से अभी भी जारी है। विभिन्न मानव सभ्यताओं में मशरूम हमेशा से भोजन का स्रोत रहा है। औषधि हेतु उपयोग और कवक की आकृतिक विशेषताएं अतीत और आधुनिक समय में मनुष्यों को आकर्षित करती रही हैं। *ऐस्ट्रायस एशियाटिकस* को इन राज्यों की स्थानीय भाषा या लोक बोली में सफ़ेद/सादा पुटका/ रूगड़ा और *ऐस्ट्रायस अडरेटस* को चंदन /चांदना पुटका/ रूगड़ा कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि आसमानी बिजली का चमकना और गड़गड़ाहट पुटका/ रूगड़ा की वृद्धि को बढ़ाता है और इसलिए तूफान शांत होते ही स्थानीय लोग उन्हें खोदकर निकाल लेते हैं। इन दोनों मशरूमों को झारखंड में स्थानीय लोग अपने स्वाद के कारण कभी-कभी शाकाहारी मटन मानते हैं। रूगड़ा के कच्चे फलकाय छोटे आलू जैसे दिखते हैं। ये कच्चे फलकाय ही केवल खाने योग्य होते हैं। अन्यथा पक्के हुए फलकाय छोटे तारों के आकार के होते हैं और अखाद्य होते हैं।

आम आदमी को जंगलों में, *ऐस्ट्रायस* की दोनों प्रजातियां सतही तौर पर एक जैसी दिखती हैं। इसलिए इन दोनों को गूढ़ प्रजाति के रूप में जाना जाता है। कवकों की गूढ़ प्रजातियां लक्षणात्मक रूप से अत्यधिक समान होती हैं जिनका विभेदन केवल प्रशिक्षित कवक विशेषज्ञ ही तय कर सकते हैं। लेकिन आकृतिक विशेषताओं के संयोजन से अर्थात् कवक फलभित्ति की मोटाई एवं बाहरी सतह की प्रकृति, ग्लीबा के रंग के आधार पर इन दोनों में विभेद किया जा सकता है। वर्तमान में डीएनए बारकोडिंग और आणविक जातिवृत्तीय अध्ययनों ने इन दो प्रजातियों को स्वतंत्र पहचान दिया है। प्रस्तुत लेख में *ऐस्ट्रायस* की विभिन्न प्रजातियों के ज्ञात नाभिकीय/केन्द्रक आईटीएस-डीएनए अनुक्रम पर अधारित जाति-इतिहास संबंधी/ जातिवृत्तीय पारसीमोनी विश्लेषण का चित्रांकन किया गया है जिसमें स्पष्ट रूप से पृथक-पृथक क्लेड/जीवशाखाएं पाई गई हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि क्लेड/जीवशाखा जीव जातियों का ऐसा समूह होता है जिसमें किसी प्रजाति और उससे विकसित हुई जीवित और विलुप्त प्रजातियां शामिल होती हैं। लेख में *ऐस्ट्रायस* की विभिन्न ज्ञात प्रजातियों का पारसीमोनी विश्लेषण आईटीएस नाभिकीय/ आईटीएस-डीएनए अनुक्रम की अनुमानी खोज द्वारा किया गया है। चित्र 3 में *पिसोलिथस* प्रजाति का नाभिकीय/ केन्द्रक आईटीएस-डीएनए अनुक्रम (जीन) बाह्य समूह/आउटग्रुप के रूप में उपयोग किया गया है और टर्मिनल शाखाओं को उपयुक्त जीनबैंक परिग्रहण संख्या और प्राकृतिक प्राप्ति स्थलों के देशों के साथ लेबल किया गया है। नोड्स पर संख्याएं पारसीमोनी और महत्तम संभावना विश्लेषण से प्राप्त बूटस्ट्रैप

चित्र 2. छद्म भू-तारा कवक *ऐस्ट्रायस एशियाटिकस* और *ए. ओडोरैटस* का अर्थव्यवस्था और आजीविका अध्ययन क्षेत्रों में *ऐस्ट्रायस* संग्रह और स्थानीय लोगों के साथ बातचीत; स्थानीय बाजार में छद्म भू-तारा कवक *ऐस्ट्रायस* प्रजाति की बिक्री

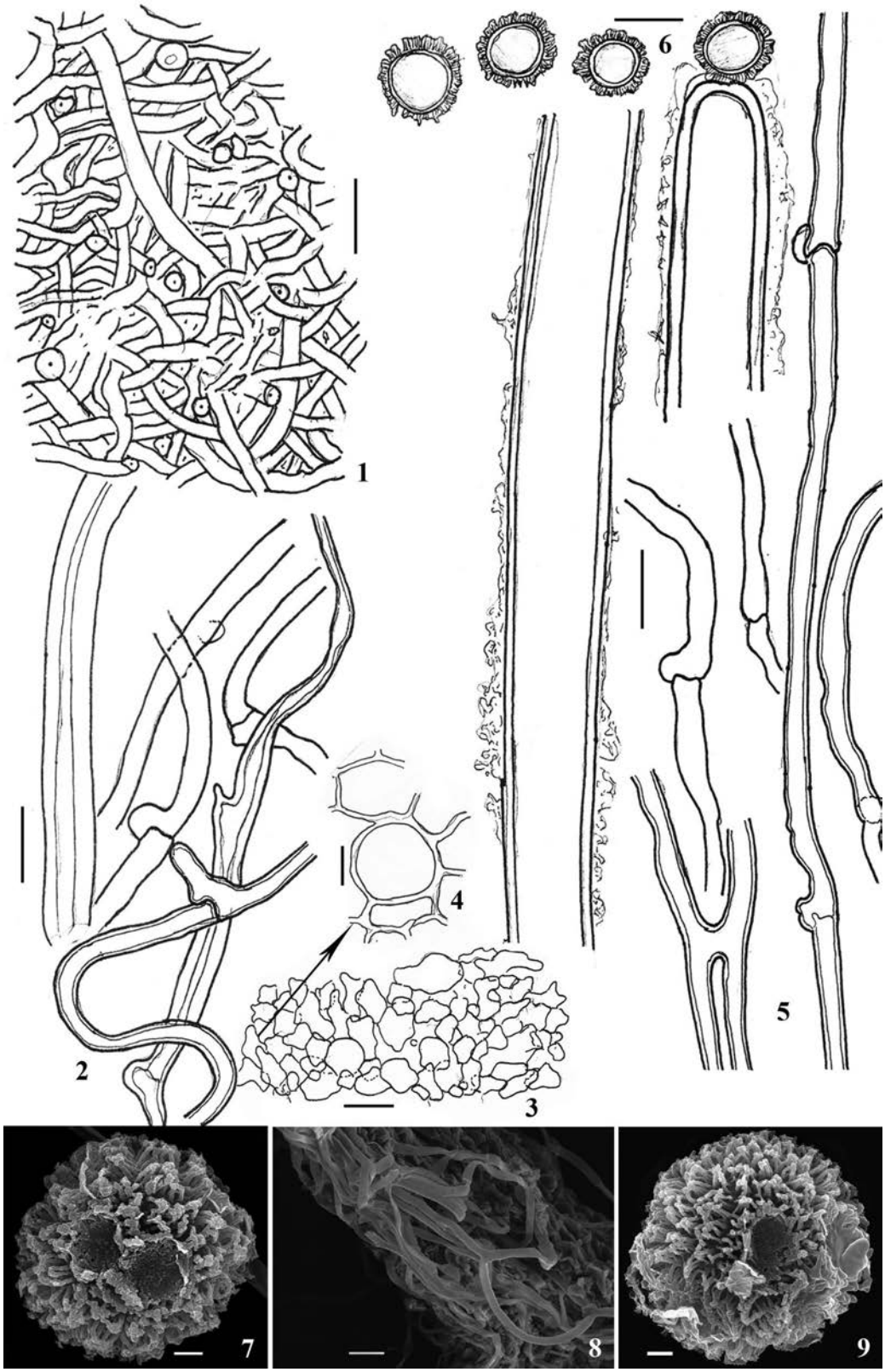

चित्र 3. कूट अर्थस्टार कवक के सूक्ष्म कोशीय संरचनाएं 1. रेशेदार परत के कवक तंतु 2. आंतरिक कवक-फलभिति के कवक तंतु 3. आभाषी मृदुतक परत के कवक तंतु 4. आभाषी मृदुतक कोशिका 5. तंतु जटा परत के कवक तंतु 6. संयुक्त प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में बीजाणु, 7. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में एस्ट्रायस एशियाटिकस के बीजाणु 8. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में राइज़ोमोर्फ्स/ तंतु जटा के कवक तंतु 9. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में ए. ओडोरैटस के बीजाणु

मूल्यों का प्रतिशत और बायेसियन विश्लेषण से पिछली संभावनाओं को दर्शाती हैं। भारतीय *ऐस्ट्रायस* प्रजातियों को मोटे अक्षरों में दर्शाया गया है।

जंगली खाद्य मशरूम के फलकाय में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, विटामिन विशेष रूप से पानी में घुलनशील विटामिन जैसे एस्कॉर्बिक एसिड और थायमिन भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही साथ इसमें कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम जैसे खनिजों के अलावा सल्फर, पोटैशियम, लोहा, जस्ता, मैंगनीज, तांबा और बोरान तत्व भी पाए जाते हैं जिनकी मानव शरीर में उपापचयी भूमिका होती है। मशरूम में आर्द्रता की मात्रा पोषक तत्व को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख कारक है। मशरूम के फलकाय का सबसे महत्वपूर्ण घटक या पोषण मूल्य मुख्य रूप से इनका उच्च प्रोटीन, फाइबर और निम्न वसा युक्त होना है। *ऐस्ट्रायस* प्रजाति/ वंश के मशरूम कई लाभकारी पोषण सम्बन्धी तत्वों से परिपूर्ण होते हैं। इनमें कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सल्फर, मैग्नीशियम और आयरन पाए जाते हैं। लौह तत्व लगभग 60–70% होते हैं।

पोषण आधारित तालिका

पोषक तत्व	*ऐस्ट्रायस एशियाटिकस*	*ऐस्ट्रायस अडरेटस*
कार्बोहाइड्रेट	48.48 ग्राम/100 ग्राम	43.54 ग्राम/100 ग्राम
अपरिष्कृत प्रोटीन	20.75 ग्राम/100 ग्राम	18.72 ग्राम/100 ग्राम
वसा	0.59 ग्राम/100 ग्राम	0.27 ग्राम/100 ग्राम
रेशा	6.9 ग्राम/100 ग्राम	6.3 ग्राम/100 ग्राम
आर्द्रता-मात्रा	22.20%	29.91%
कुल ऊर्जा मात्रा (पकाने के पूर्व)	1185.4±4.18 किलो जूल/100 ग्राम अनुमानित	
कुल ऊर्जा मात्रा (पकाने के बाद)	1191.3±6.75 किलो जूल/100 ग्राम अनुमानित	

झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और छत्तीसगढ़ साल वृक्ष बाहुल्य वनक्षेत्रों में स्थानीय लोग मुख्य रूप से महिलाएं और बच्चे मध्य जून से लेकर मध्य अगस्त तक सुबह-सुबह इसे खोजकर चुनने के लिए निकल पड़ते हैं। कुछ ही घंटों की अथक खोज में, लकड़ी की टोकरी या झोला लगभग एक किलोग्राम अपरिष्कृत (मिट्टी युक्त) सादा और चंदना रूगड़ा से भर जाता है। ये मशरूम स्थानीय बाजार या मध्यस्थों के पास 600 से 800 रुपये प्रति किलोग्राम के दर से बेचे जाते हैं जबकि धोकर साफ किए गए फलकाय से आसानी से 800 से 1200 रुपये प्रति किलोग्राम की आमदनी हो जाती है। गुणवत्ता के आधार पर इसकी कीमत 1700 रुपये प्रति किलोग्राम तक भी हो सकती है। इसके अलावा, वे अपनी स्वादिष्टता के कारण शहर में और भी ऊंचे दाम पर बेचे जाते हैं। इन मशरूमों के छिलके सख्त होते हैं और अन्य मांसल खाद्य मशरूमों की तुलना में ये आसानी से खराब नहीं होते हैं। इसलिए इन्हें महानगरीय सुपरमार्केट में ऊंची कीमत पर बेचा जा सकता है। इससे अंततः स्थानीय लोगों को ही लाभ होगा। दूरदराज के स्कूलों में इस मशरूम को मध्याह्न भोजन के दौरान परोसा जा सकता है। परिणामस्वरूप स्कूली बच्चे स्थानीय जैव विविधता के उपयोग के बारे में भी सीख पाएंगे।

जैविक विविधता पर कन्वेंशन (सीबीडी) 29 दिसंबर 1993 को तीन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लागू हुआ था और भारत भी इसका सदस्य है। कवकों की जैवविविधता के अध्ययन का तालमेल वर्गिकी के अन्य विषयों के साथ समुचित रूप में नहीं हो पा रहा है क्योंकि विश्व के अन्य विकसित और विकासशील देशों की तुलना में भारत में इनके अध्ययन पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। वर्तमान में, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण और अन्य शोध संस्थानों के अलावा विश्वविद्यालय भी इस संबंध में सकारात्मक भूमिका निभा रहे हैं। फिर भी इन संस्थानों को अभी भी वित्त पोषण एजेंसियों और सरकार से और अधिक सहयोग और सहायता की आवश्यकता है। जहां तक मशरूमों की जैवविविधता का सवाल है, इस क्षेत्र में शोधकर्ताओं की कमी के कारण वर्गिकी की दृष्टि से अधिकांश कवक प्रजातियों की पारिस्थितिकी और वितरण संबंधी ज्ञान अपर्याप्त है। ज्ञान आधारित आधुनिक समाज में कवकों के बारे में जानकारी की कमी और पारिस्थितिकी तंत्र में जीवों के इन प्रमुख समूहों के योगदान की जानकारी का अभाव संरक्षण के लिए एक समस्या है।

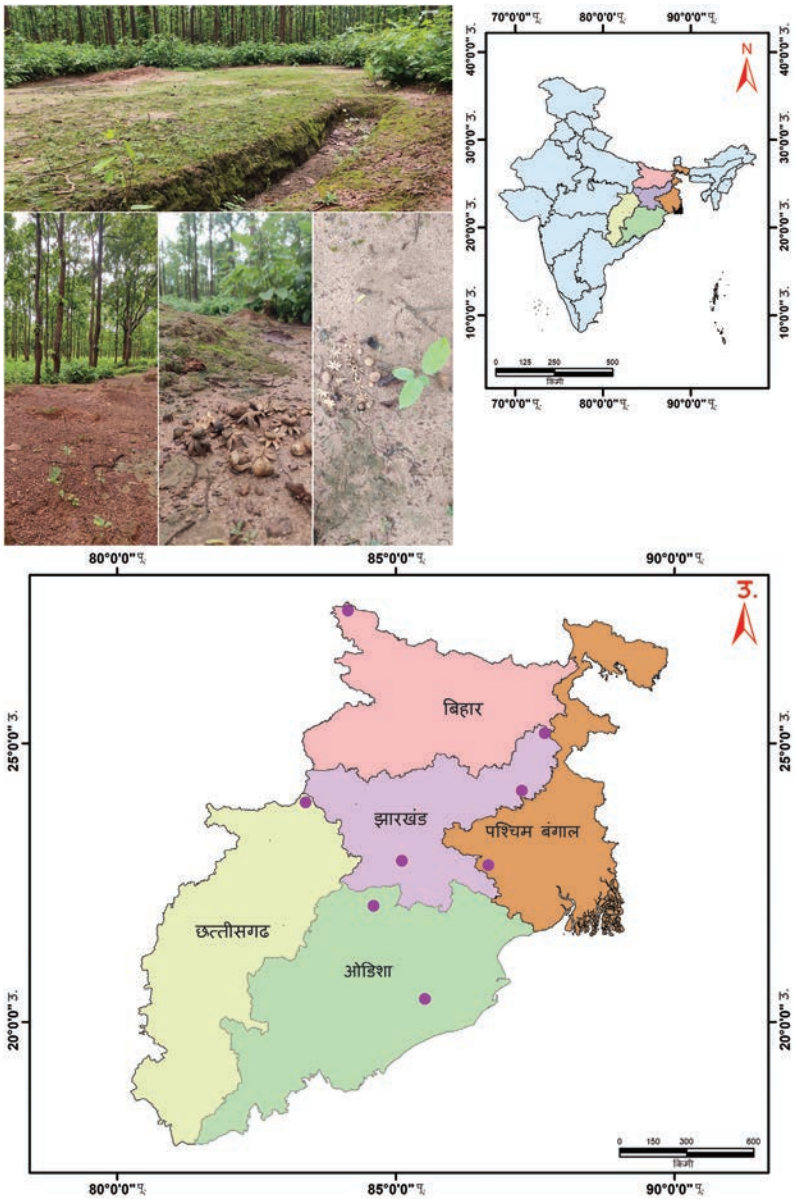

चित्र 4. भारत के मानचित्र में बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल और ओडिशा की स्थिति; अध्ययन की अवधि के दौरान भारतीय *ऐस्ट्रायस* प्रजातियों का सर्वेक्षण स्थल और उपयुक्त वास-स्थान की छवियां

सर्वप्रथम मशरूमों से प्राप्त लाभों का न्यायसंगत साझाकरण होना चाहिए जिसका स्थानीय लोग समुचित फायदा प्राप्त कर सकते हैं। वनक्षेत्रों में कटाई के लिए अभी तक कोई निर्दिष्ट दिशानिर्देश नहीं है। इसके अलावा, गहन शोध के बाद जागरूकता संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है क्योंकि हमारे पास उन्हें कृत्रिम रूप से प्रचारित करने के लिए कोई दूसरा उपयुक्त तरीका नहीं है। अत: इनका विवेकपूर्ण उपयोग ही एकमात्र विकल्प है। भविष्य में यदि कोई उपयुक्त वैज्ञानिक पद्धति विकसित होगी, तो हम मशरूमों से प्राप्त आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से उत्पन्न होने वाले लाभों का उचित और न्यायसंगत बंटवारे पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। तीसरा, जैविक विविधता का संरक्षण केवल प्राकृतिक वनों को बचाकर ही किया जा सकता है। इसलिए साल वृक्ष बाहुल्य वनों का संरक्षण आवश्यक है जिससे साल वृक्ष और संबद्ध वनस्पतियों, जीवों और कवकों का संरक्षण हो पाएगा। जैविक विविधता के घटकों का विवेकपूर्वक उपयोग करके हम वर्षों तक प्रकृति का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 10-12 (2023)

आर्किड्स - वानस्पतिक रत्न

[1] एम. यू. शरीफ़, [1] के. ऐ. सुजाना व [2] एस. पी. पाण्डा

[1] भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्रीय केंद्र, कोयंबत्तूर
[2] आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

आर्किड्स उत्तम सुंदरता और विविधता के फूल हैं और उन्हें हमेशा प्रेम, सौंदर्य, अनुग्रह, उत्कृष्टता और भव्यता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। आर्किड्स कई मायनों में रहस्यों से भरे हैं और उनके फूलों में आकार, दिशा, संरचना और रंग में विविधता की अविश्वसनीय श्रृंखला पाई जाती हैं। इसलिए वे वनस्पति साम्राज्य में 'वानस्पतिक रत्न' के रूप में अपनी स्थिति दर्ज किए हुए हैं। (चित्र 1 - 2)।

चित्र सं.1. *ओन्सिडियम* प्रजाति (डांसिंग गर्ल आर्किड)

चित्र सं.2. *पैफियोपेडिलम हिर्सुटिशिमम* प्रजाति (लेडीज स्लीपर आर्किड)

आर्किड्स के सुन्दर फूलों के साथ-साथ फूलों के गमलों का भी विश्व में करोड़ों डॉलर का व्यापार फल-फूल रहा है। आर्किड्स अपने अनूठे आकर्षण के कारण दुनियाभर में सभी बागवानी प्रेमियों के लिए पहली पसंद और सम्मोहन स्रोत बनते जा रहे हैं। आर्किड के फूलों के गुलदस्ते लंबे समय तक ताजा रहते हैं। इसलिए दुनिया भर में उद्यान विशेषज्ञ और उद्यान के प्रति रूचि रखने वाले लोगों के बीच इसका मान और बढ़ा गया है। अंतरराष्ट्रीय फूल बाजार में आर्किड्स का हिस्सा लगभग 8% है। ग्रीक दार्शनिक **'थियोफ्रेस्टस'** ने आर्किड्स की खोज की। उन्होंने अपनी पुस्तक **'इनक्वायरी इन टू प्लांट्स'** में पौधों के एक समूह को आर्किड्स नाम दिया। तब से लेकर आज तक आर्किड्स लोगों को सम्मोहित करते रहे हैं। आर्किड्स ग्रीक शब्द **'आर्किस'** से लिया गया है जिसका अर्थ **वृषण** है, यह स्थलीय आर्किड्स वंश **'आर्किस'** के युग्मित कंद और इसी तरह की अन्य समान प्रजातियों को दर्शाते हैं। विविधताओं से भरे हुए आर्किड्स पुष्पीय पौधों के उच्च विकसित और सफल समूहों में से एक हैं और वनस्पतियों के बीच अपने विकास की एक विशिष्ट रेखा का प्रतिनिधित्व करने के लिए माने जाते हैं। वे फूलों के बीच अपनी विशेषज्ञता की बेहद अविश्वसनीय श्रृंखला प्रदर्शित करते हैं जो पौधों के किसी अन्य समूह में अद्वितीय है। उन्हें सही मायने में सजावटी पौधों के बीच शाही या अभिजात वर्ग का कहा जाता है। दुर्लभ हीरे की तरह, 19 वीं शताब्दी के दौरान एक ऐसा समय था जब कुछ भारतीय आर्किड्स इंग्लैंड में शानदार कीमतों पर खरीदे जाते थे। सन् 1880 के दौरान उत्तर-पूर्व भारत के लेडीज स्लीपर आर्किड् (*पैफियोपेडिलम हिर्सुटिशिमम*) से केवल इंग्लैण्ड में 9000 रूपये की धनराशि प्राप्त हुई। भौगोलिक रूप से, विश्वभर में आर्किड्स उच्च आर्द्रता वाले उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक सघनता से पाए जाते हैं। मेक्सिको, मध्य व दक्षिण अमेरिका और एशिया में आर्किड्स की व्याप्ति बहुत ही समृद्ध है। ध्रुवीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों को छोड़कर समुद्रतल से लेकर अल्पाइन पर्वतों तक, वनस्पतियों के सभी स्तरों पर उनको देखा जा सकता है। आर्किड्स की तरह शायद ही कोई अन्य पौधा हो सकता है जो इतना परिवर्तनशील और अनुकूल हो, ये विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी तेजी से वृद्धि कर सकते हैं। अप्रैल से अक्टूबर तक की लंबी अवधि में प्रति वर्ष लगभग 1500 से 2500 मिमी की अत्यधिक वर्षा, 70% से 95% की सापेक्ष आर्द्रता और 10^0 से 25^0 के बीच तापमान आर्किड्स की बहुलता के लिए अनुकूल जलवायु परिस्थितियां प्रदान करते हैं।

आर्किड्स एकबीजपत्री होते हैं और 'आर्किडेसि' कुल में आते हैं जिसमें 820 वंश के साथ 25,000 प्रजातियां और 1 लाख से भी अधिक स्वीकृत संकर या कृष्ट प्रजातियां शामिल हैं। भारत में अभी तक लगभग 155 वंश के अंतर्गत 1256 प्रजातियों का वर्णन किया गया है (सिंह व अन्य, 2019) तथा हिमालय, उत्तर-पूर्वी भारत, पश्चिमी घाट और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह इनके प्रमुख प्राकृतवास हैं। अधिकांश आर्किड्स स्वभावत: शाकाहारी पौधे हैं। इनका आकार आमतौर पर 10 सेमी से 1 मीटर तक होता है। सबसे छोटी ज्ञात आर्किड्स *ओबेरोनिया एफिनिस, टिनीओफिलम और बल्बोफिलम* प्रजातियां हैं, जबकि *वैनिला* की प्रजातियां 30 मीटर तक लंबी होती हैं। आर्किड्स विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं जैसे - अधिपादपीय, शैलरागी, ह्यूमसरागी और स्थलीय। अधिकांश अधिपादपीय आर्किड्स जटा मूल विकसित करते हैं जिसके सहारे वे दूसरे पेड़ों से चिपके रहते हैं और इन जड़ों में विकसित **'आर्द्रताग्राही गुंठिका (वेलामेन)'** ऊतक के माध्यम से वातावरण से नमी को अवशोषित करते हैं। पोषक तत्व आमतौर पर खाद-मिट्टी के माध्यम से सामान्य जड़ों द्वारा अवशोषित होते हैं।

चित्र सं. 3. *एपिजेनियम एम्पलम* (मकड़ी की तरह आर्किड्स)

चित्र सं. 4. *कॉटोनिया पेडुंक्युलेरिस* (बम्बल मक्खी की तरह आर्किड्स)

आमतौर पर आर्किड्स दो तरह से वृद्धि करते हैं (i) **एकलाक्षी (मोनोपोडियल)** और (ii) **संधिताक्षी (सिम्पोडियल)**। एकलाक्षी आर्किड्स में टहनियों का विस्तार होता है और मुख्य अक्ष की नोक पर नई पत्तियां निकलती हैं, जबकि संधिताक्षी आर्किड्स वहां पर निकलते हैं जहां नई टहनियां पिछले साल की टहनियों के आधार से उत्पन्न होती हैं। कई संधिताक्षी आर्किड्स विशिष्ट रूप से असाधारण आकार के गुच्छों का निर्माण करते हैं जो भोजन और पोषक तत्वों के लिए भंडारण अंगों के रूप में कार्य करते हैं जिन्हें **'कूटकंदीय (स्यूडोबल्बस)'** कहा जाता है। ये कूटकंद बेलनाकार, धुरीकार, अंडाकार, गोलाकार, बैरल के आकार या बटन के आकार के हो सकते हैं। कूटकंद 1 से 2 मिमी तक छोटे हो सकते हैं जैसे कि *बल्बोफिलम माइनुटिशिमम* में या 5 मीटर तक बड़े हो सकते हैं जैसे कि *ग्रामैटोफिलम स्पेसिओसम* में।

चित्र सं. 5. *सीलोगाइन ओवैलिस* (मकड़ी की तरह आर्किड्स)

चित्र सं. 6. *पैपिलियोनैंथे टेरस* (तितली की तरह आर्किड्स)

यद्यपि आर्किड का पुष्प जटिल प्रतीत होता है, फिर भी यह जटिल रूप में भी सरल है। इसमें छह रंगीन खंड होते हैं जो दो भागों में सममित रूप से व्यवस्थित रहते हैं। तीन बाहरी खंड बाह्य दल (सीपल्स) होते हैं, दो आंतरिक खंड पंखुड़ी होते हैं और तीसरा आंतरिक खंड

चित्र सं.7. *एरिया अंडमानिका* (गौरैया की तरह आर्किड्स)

मुख्य पंखुड़ी है जिसे ओष्ठक (**'लिप'** या **'लेबेलम'**) कहा जाता है। पुंकेसर और स्त्रीकेसर की वर्तिका संलय होकर **'स्तंभ (कॉलम)'** या **'पुंजायांगस्तम्भ (गाइनोस्टीमियम)'** बनाते हैं। अंडाशय सभी पुष्प अंगों के आधार पर नीचे पाया जाता है। आर्किड्स फूलों की सबसे सुस्पष्ट विशेषताएं उनकी असंख्य संरचना, आकार, रंग और गंध में होती हैं। कहीं भी ऐसे फूल मिल सकते हैं जो पिनहेड की तरह छोटे हो सकते हैं या कई ऐसे भी जो एक मीटर या उससे अधिक तक बढ़ सकते हैं। रंगों की श्रृंखलाएं विस्तृत होती हैं। प्रायः अलग-अलग पंखुड़ियां अलग-अलग रंगों में दिखाई देती हैं अन्यथा धब्बों और धारियों से सजी होती हैं। वे मकड़ी, मक्खी, सफेद चींटियों, कीट, मच्छर, कबूतर, लोमड़ी की पूंछ, गौरैया, ईगल और बैल का सिर आदि जैसे आभासी रूपों में भी दिखते हैं (चित्र 3 - 8) जो परागण की छलभरी रणनीतियों का संकेत देते हैं।

आर्किड्स अपनी विविध और आकर्षक फूलों की अपनी गरिमा के लिए विश्वभर में व्यावसायिक रूप से बहुत लोकप्रिय हो चुके हैं। दुनिया के कई देशों में इसका व्यवसाय प्रमुख स्थापित वाणिज्यों में से एक हैं। विवेकपूर्ण उपयोग, वंश वृद्धि तथा व्यावसायीकरण के माध्यम से भारत में आर्किड्स का व्यापार जबरदस्त रूप से बढ़ रहा है। नर्सरी तकनीकों तथा कौशल और प्रवर्धन के लिए बुनियादी ढांचा की कमी आर्किड्स की स्वदेशी विविधताओं की उपेक्षा के मुख्य कारण हैं। फिर भी भारत में कुछ उद्यमी आर्किड्स की खेती में सक्रियता से लगे हुए हैं तथा घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बिक्री के लिए संकर और सुन्दर फूलों का उत्पादन कर रहे हैं। कुछ संस्थानों ने आर्किड्स के बड़े पैमाने पर प्रवर्धन के लिए ऊत्तक संवर्धन और प्रजनन प्रयोगों की शुरुआत की है। निष्कर्षतः, आर्किड्स अपने पारिस्थितिकी तंत्र के साथ एक सुगमतापूर्वक संतुलन में रहते हैं। वे अत्यधिक नाजुक होते हैं और पर्यावरणीय क्षति के उत्कृष्ट संकेतक का काम करते हैं। विलुप्त होने की कगार पर पहुंच चुके इस सुंदर प्राकृतिक धरोहर का संरक्षण और उनकी वृद्धि के लिए ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 13 (2023)

वेद और पर्यावरण

कैलाश प्रसाद कुशवाहा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण मुख्यालय, कोलकाता

आज संपूर्ण विश्व **पर्यावरण** के प्रति गंभीर है। पर्यावरण और **प्राणी** में एक गहरा संबंध है। पर्यावरण में बदलाव प्राणी में भी बदलाव ला सकता है। अतः पर्यावरण के संरक्षण के लिए हमें अपने चारों ओर के **वातावरण** को सुरक्षित रखना होगा तथा उसे अपने अनुकूल बनाना होगा। भारतीय चिन्तन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना की मानव जाति का इतिहास। प्रकृति के क्रियाकलापों के विविध गतिविधियों का वेदों में भलीभांति वर्णन है और प्रकृति के क्रियाकलाप भी **वैज्ञानिक** नियमों पर आधारित हैं। इन नियमों का उल्लघंन विनाश की प्रक्रिया को आमन्त्रण देता है।

वेदों में प्रकृति की महत्ता को दर्शाया गया है। **ऋग्वेद** के अग्नि में स्वरूप कार्य एवं गुणों की विस्तृत व्याख्या की गई है। **यजुर्वेद** में वायु के विविध रूपों एवं गुण धर्म का वर्णन है। **सामवेद** में जलतत्व एवं **अथर्ववेद** में पृथ्वी तत्व की व्याख्या की गई है। पर्यावरण के निर्माण एवं सन्तुलन में इन्हीं चार तत्वों की मुख्य भूमिका होती है जिनका वर्णन सामवेद में विस्तृत रूप में किया गया है। वेदों में प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ प्रकृति संरक्षण के महत्व का भी वर्णन है। वेदों में पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक और देव लोक है जो सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान श्री हरिविष्णु द्वारा रचित एवं संरक्षित है। ऋग्वेद में वर्णित है "अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा" अर्थात् भगवान विष्णु के तीन कदम सत्व, रजस, तमस के प्रतीक हैं। इनका सामन्जस्य सृष्टि निर्माण एवं संरक्षण के लिए आवश्यक है। भूमण्डल, वायुमण्डल और जलमण्डल से प्राप्त ऊर्जा का समुचित प्रयोग करके ही हम वातवरण को संरक्षित रख सकते हैं। इनकी ऊर्जा के अनुपात से अत्यधिक ऊर्जा का दोहन ही **प्रदूषण** कहलाता है जिसका प्रभाव पर्यावरण के सन्तुलन पर पड़ता है। इसे वैदिक ऋषि भलीभांति जानते थे और इसी कारण से वे प्रकृति के संरक्षण पर जोर डालते थे।

भारतीय चिन्तन में मनीषियों ने प्रकृति को मातृ तत्व के रूप में माना है और स्वयं को उसके पुत्र के रूप में।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।।
ऊँ पृथ्वी त्वयां धृता लोका, देवि त्वं विष्णुना धता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्र कुरु वासनम्।।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस सूर्य को अक्षय ऊर्जा का स्रोत स्थावर जंगम की आत्मा हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों पूर्व बताया है, उसी को आज वैज्ञानिकों के द्वारा प्रमाणित किया गया है।

दशहरे के अवसर पर शमी के वृक्ष को पूजने का विधान है। तुलसी को शुद्धि की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। वायुमण्डल की शुद्धिकरण में तुलसी अत्यधिक आक्सीजन प्रदान करने वाला पौधा है। आज के बदलते परिवेश में हर आदमी शुद्ध वायु में श्वास लेने को ललायित है। बढ़ती जनसंख्या और वनों की घटती संख्या के कारण वायुमण्डल में दिन प्रतिदिन प्रदूषण बढ़ रहा है। यदि हमें स्वस्थ सन्तुलित और प्रफुल्लित जीवन जीना है तो हमें वैदिक साहित्य के निर्देशन के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन लाना होगा।

अतः अगर हम प्रकृति का दोहन चाहे वृक्ष वाटिका का या जल का अत्यधिक दुरूपयोग करेंगे तो वह दिन दूर नहीं है जब हम गर्मी से संत्रस्त होंगे और प्राकृतिक आपदाओं का शिकार भी होते रहेंगे। कहीं अधिक वर्षा कहीं अधिक सूखा कहीं बाढ़ और कहीं भूकम्प से संपूर्ण जैवमंडल का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। हमें वैज्ञानिक नियमों का पालन करते हुए सुखी समृद्ध जीवन बिताने के लिए प्रकृति-संतुलन बनाये रखने हेतु वेदों में वर्णित पर्यावरण की सुरक्षा हेतु वृक्षारोपण करना चाहिए और यज्ञिय प्रक्रियाओं द्वारा वातावरण का शुद्धिकरण करना चाहिए। वृक्षारोपण के सन्दर्भ में वाराह पुराण में कहा गया है कि जो व्यक्ति पीपल, नीम या बरगद का एक वृक्ष, अनार या नारंगी के दो वृक्ष, आम के पांच एवं लताओं के दस वृक्ष लगाता है, वह कभी भी नारकीय पीड़ा को नहीं भोगता और न ही नरक यात्रा करता है। हमारे घरों में पूजा में किए जाने वाले विभिन्न कर्मकाण्ड भी हमें प्रकृति से प्रेम करने, उसको संरक्षित रखने का संदेश देते हैं। वर्तमान समय में पर्यावरण और प्रकृति संबंधी वैदिक उपाय ही संपूर्ण पृथ्वी को बचा सकता है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 14 (2023)

खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) - *बैकौरिया रैमिफ्लोरा* लाउर. (फाइलैन्थेसी)

पंकज अरविंद ढोले, लाल जी सिंह, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी, महादेवकुमार एस. व प्रकाश होरो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर

बैकौरिया रैमिफ्लोरा लाउर. (फाइलैन्थेसी)

खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में एक लोकप्रिय फलीय वृक्ष है। वनस्पति विज्ञान में इसे *बैकौरिया रैमिफ्लोरा* लाउर. (फाइलैन्थेसी) नाम से जाना जाता है। 'बैकौरिया' एक लैटिन शब्द है जो इसके सुनहरे पीले फलों के रंग को दर्शाता है। इसे एशिया में स्थानिक माना जाता है और अभी तक इसका वर्णन प्रमुख रूप से भारत, नेपाल, चीन, बांग्लादेश, प्रायद्वीपीय मलेशिया, म्यांमार और थाइलैंड से किया गया है। भारत में इसका वर्णन अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह, उत्तर-पूर्वी भारत, पश्चिमी हिमालय, केरल, ओडिशा और तमिलनाडु से किया गया है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के द्वीपों पर वास करने वाले आदिवासियों और स्थानीय लोगों के लिए खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) एक प्रमुख स्वास्थ्यवर्धक विटामिन सी युक्त स्वादिष्ट फल है। यह फल यहां के सभी स्थानीय बाज़ारो में सामान्य तौर पर बिकते हुए देखा जा सकता है। यह वृक्ष अपनी आर्थिक और औषधीय गुणों के लिए लोगों की खास पसंद है। साथ ही यहां पर इसे एक सजावटी पौधे के रूप में भी लगाया जाता है । इसे उगाने के लिए पूरे साल 24-28 डिग्री सेल्सियस तापमान युक्त वातावरण अनुकूल माना जाता है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की वातावरणीय परिस्थिति इसके प्राकृतवास की दृष्टि से बिल्कुल अनुकूल है और इन द्वीपों में इसकी प्राप्ति का यह मूल रहस्य है। खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) एक सदापर्णी पेड़ है जो आमतौर पर 10 -15 मीटर लंबा होता है। लेकिन कभी-कभी यह 25 मीटर की लंबाई तक भी बढ़ सकता है। इसमें साल भर फलन हो सकते हैं। इसके फल अंडाकार, पीले रंग, गुलाबी से लेकर चमकीले लाल अथवा बैंगनी रंग के होते हैं। गूदेदार और पीले रंग के फल सुखद स्वाद के साथ कुछ हद तक अम्लीय होते हैं। फलों को 4-5 दिनों तक ताजा रखा जा सकता है या उबालकर नमक के साथ बंद जार में अच्छी तरह रखा जा सकता है। फलों से अचार भी बनाया जाता है। अधिकांश स्थानीय लोग कच्चे फल खाना पसंद करते हैं। फलों के गूदे में मीठे और खट्टे का मिश्रित स्वाद होता है, जिन्हें खाद्य प्रसंस्करण के द्वारा वाणिज्यिक उपयोग में लगाया जा सकता है। फलों का उपयोग त्वचा रोगों के इलाज के लिए किया जाता है। खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) के पेड़ के ताजे छाल का रस तथा उसके छाल, जड़ और लकड़ी का औषधीय रूप से उपयोग किया जाता है। छाल, जड़ों और लकड़ी का उपयोग भूरा-लाल रंग बनाने के लिए किया जाता है। छाल का उपयोग रंगाई में रंगबंधक के रूप में भी किया जाता है। खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) की लकड़ियां मध्यम रूप से कठोर, मजबूत, और टिकाऊ होती हैं। इनका उपयोग कैबिनेट कार्य, निर्माण, कृषि उपकरण, फर्नीचर, नाव और छोटी वस्तुओं को बनाने के लिए किया जाता है। विभिन्न जैव रासायनिक विश्लेषण अध्ययनों में खट्टाफल (बर्मीज ग्रेप) में प्रचुर मात्रा में मौजूद पोषक तत्वों का उल्लेख मिलता है। इस फल के विशेष गुण के रूप में इसमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व के रूप में विटामिन सी की उपस्थिति मानी जाती है और इसी कारण इन द्वीपों के स्थानीय लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका सेवन प्रमुख रूप से करते हैं।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 15-21 (2023)

कोयम्बत्तूर जिले और उसके आसपास के इलाकों में भोजन और औषधि के रूप में उपयोग होने वाले सामान्य जंगली पौधे

एम. आनंद लक्ष्मी, अरुमुगम एस., मेहला देवी आर. व नित्या एस.पी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय परिसर, कोयम्बत्तूर, तमिलनाडु

यह माना जाता है कि भारत में पारंपरिक औषधीय उपचार के लिए 2500 पौधों की प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। पौधों की सौ प्रजातियां नियमित स्रोत के रूप में औषधीय उद्योगों में औषधियां बनाने हेतु उपयोग होती हैं। आजकल चिकित्सा विज्ञान में हो रहे नए-नए अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तमिलनाडु राज्य के कोयम्बत्तूर जिला में कुछ खाद्य पौधों को उनके निवारक या उपचारात्मक गुणों के लिए उपयोग किया जाता है। कोयम्बत्तूर की संस्कृति कोंगु वेल्लाला गाउंडर के समुदाय पर आधारित है। कोयम्बत्तूर को व्यापारिक और लोकप्रिय रूप से "दक्षिण भारत का मैनचेस्टर" कहा जाता है। कोयम्बत्तूर के ग्रामीण लोगों की यह परंपरा रही है कि वे अपने आसपास उपलब्ध जंगली पौधों को भोजन और औषधि के रूप में उपयोग करते है। उनका मानना है कि स्वस्थ आहार ही रोगमुक्त स्वस्थ जीवन प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुंचने का एक आसान और सस्ता तरीका है। हम जो कुछ भी खाते हैं, वह कई लंबी और गंभीर बीमारियों का कारण बन जाता है, ऐसे में एक स्वस्थ आहार खाने से इन आम विनाशकारी परिस्थितियों के इलाज और रोकथाम में मदद मिलती है। फल, सब्जियों और साबुत अनाज से भरपूर आहार का सेवन मन और शरीर दोनों के लिए अच्छा होता है। ये खाद्य पदार्थ हमारी प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाते हैं। ये पोटैशियम, फाइबर, फोलिक एसिड और विटामिन जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व भी प्रदान करते हैं, जो शरीर में हर प्रक्रिया और कार्य के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, पोटैशियम स्वस्थ रक्तचाप को बनाए रखने में मदद करता है। फाइबरयुक्त आहार रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करता है। फोलिक एसिड शरीर में लाल रक्त कणिकाओं का उत्पादन करने में मदद करता है और विटामिन पूरे शरीर में उपयोग किए जाने वाले ब्लॉक का निर्माण करते हैं। पूरे तमिलनाडु में लोकप्रिय स्ट्रीटफूड मशरूम कालन का संबंध कोयम्बत्तूर शहर से है। यह आमतौर पर मसालेदार शोरबा में गहरे तले हुए मशरूम (आमतौर पर कटा हुआ मशरूम) को उबालकर तैयार किया जाता है। इसे तब तक उबाला जाता है जब तक कि यह दलिया जैसी स्थिति तक नहीं पहुंच जाता है। इसमें कटे हुए प्याज और धनिया पत्ते को छिड़ककर परोसा जाता है। कोलेस्ट्रॉल और सीरम ट्राइग्लिसराइड्स को कम करने की क्षमता के कारण लहसुन का उपयोग अक्सर सभी प्रकार की खाद्य सामग्रियों को बनाने में किया जाता है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि भोजन बनाने में यहां तक कि चाय में अदरक डालने से मिचली के लिए एक प्रभावी उपचार हो सकता है। हल्दी आमतौर पर भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में खाना पकाने में इस्तेमाल किया जाने वाला एक मसाला है। हल्दी के सक्रिय संघटक को "करक्यूमिन" कहा जाता है। "करक्यूमिन" सूजन और ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करके चिंता को कम करने में मदद कर सकता है जो अक्सर लोगों में चिंता और अवसाद जैसे चितवृत्ति विकारों का कारक होते हैं। ऐसे कई अन्य पौधे हैं जिनमें पादप रसायन के रूप में जाने जाने वाले सुरक्षात्मक, रोगरोधी यौगिक होते हैं। सामान्यत: संपूर्ण पौधे को खाना महत्वपूर्ण है क्योंकि छिलके में पोषक तत्व और फाइबर होते हैं जो उपयोगी स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं।

पौधों का उपयोग कई हजार वर्षों से पारंपरिक चिकित्सा में होता रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, विकासशील देशों में 80% लोग अभी भी अपनी प्राथमिक स्वास्थ्य जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय औषधीय पौधों पर निर्भर हैं। आज नए प्रभावकारी औषधीय पौधों की पहचान करने या पहले से वर्णित जैव सक्रिय घटकों के लिए लोक वानस्पतिकी और नृजाति चिकित्साविज्ञान संबंधी अध्ययन का महत्व और अधिक बढ़ गया है। कई अध्ययनों से पता चला है कि आदिवासी आबादी न केवल दवाओं, भोजन, चारा और ईंधन के लिए वनस्पतियों पर आधारित संसाधनों पर निर्भर है, बल्कि इसकी जीव विज्ञान के मुख्य पहलू संरक्षण के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। अभी तक कई स्वदेशी हर्बल उपचार के संभावित रूप काफी हद तक अनिर्दिष्ट या अमान्यता प्राप्त हैं और इसके परिणामस्वरूप इनका उपयोग केवल स्थानीय लोगों के छोटे समूहों द्वारा किया जाता है। कोयम्बत्तूर जिला औषधीय महत्व के पौधों की दृष्टि से अति समृद्ध है, जिनका प्रयोग स्थानीय ग्रीमीणों द्वारा भोजन और चिकित्सा के लिए किया जाता है। पारंपरिक ज्ञान आमतौर पर जैविक संसाधनों से जुड़ा होता है। इस लेख में उल्लिखित तीस पौधे आमतौर पर कोयम्बत्तूर जिले में और इसके आसपास उपलब्ध बीस कुलों से संबंधित जंगली पौधे हैं, जिनका उपयोग विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं जैसे बुखार, सर्दी, खांसी, कफ और शारीरिक जकड़न, दर्द आदि के निवारण हेतु किया जाता है। पौधों से दवाओं का सबसे आम सूत्र ताजा रस, पाउडर, पेस्ट और काढ़े हैं। कभी-कभी बीमारियों

को ठीक करने के लिए विशेष रूप से पत्तियों या फलों को चबाया जाता है। उपयोग किए जाने वाले विभिन्न पौधों के हिस्सों में, पत्तियों का प्रमुख भाग होता है, यह सभी मौसमों में पत्तियों की उपलब्धता के कारण हो सकता है। इस लेख का उद्देश्य भविष्य के संदर्भ के लिए उपलब्ध जानकारी का अध्ययन और प्रलेखीकरण करना और कोयम्बत्तूर के लोगों के पारंपरिपक ज्ञान का भारत के अन्य हिस्सों में प्रचार - प्रसार करना है। कोयम्बत्तूर में और उसके आसपास, कई शोधकर्ताओं द्वारा किए गए पादप जैव-रासायनिक अध्ययनों में यह भी दर्शाया गया है कि जैविक सक्रिय यौगिकों की रासायनिक प्रकृति में उपचारात्मक शक्ति है। कोयम्बत्तूर जिले और उसके आसपास के गांवों के स्थानीय लोगों द्वारा विभिन्न मानवीय बीमारियों के इलाज के लिए भोजन और दवाओं के रूप में उपयोग किए जाने वाले सामान्य जीवनदायी जंगली पौधों का विवरण निम्नांकित तालिका में दिया गया है :

वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
ऐन्ड्रोग्रैफिस पेनीकुलाटा	ऐकेन्थेसी	निलावेम्पू (तमिल), हरा चिरायता (हिंदी)	पत्ते	इसका उपयोग डेंगू वायरल बुखार से पीड़ित व्यक्तियों के उपचार के लिए किया जाता है।
ऐजाडिरेक्टा इंडिका	मीलिएसी	वेप्पइ (तमिल) नीम (हिंदी)	पत्ते, फूल और फल	अक्सर पत्तियों के पेस्ट को मुंह से निगला जाता है। घरों में मच्छरों को मारने के लिए सूखे पत्तों का इस्तेम माल सांभरानी के साथ किया जाता है। तमिल नववर्ष समारोह के दौरान फूलों का उपयोग रसम बनाने के लिए किया जाता है।
कार्डियोस्पर्मम हैलिकाकेबम	सैपिन्डेसी	कोर्रन, मुटाकोर्रन (तमिल) कानफूटा, कपू-लफोड़ी, कर्णफूल (हिंदी)	पत्ते	शरीर के दर्द निवारक हेतु सूप लिया जाता है। पूरा पौधा डायफोरेटिक, मूत्रवर्धक, इमेटिक, रेचक, प्रशी॥ तक और अमाशय को मजबूत बनाने वाला होता है।
सेंटेला एशिएटिका	एपिएसी	वल्लाराई (तमिल) बल्लारि, मण्डूकी, खुलकुडी, गोटू कोला (हिंदी)	पत्ते	गोटू कोला वेट लॉस में मदद करने के साथ ही शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे ब्रेन, लीवर, किडनी को हेल्दी रखने का काम करता है।
कॉक्सीनिया ग्रैंडिस	कुकुरबिटेसी	कोवई (तमिल) कुंदरू (हिंदी)	पत्ते और फल	कोमल पत्तियों से बने थुवैयाल (चटनी) का उपयोग भूख बढ़ाने के लिए किया जाता है।
कोलियस ऐरोमैटिकस	लैमिएसी	कर्पूरावल्ली (तमिल) पत्थरचूर, पत्ता अजवाइन (हिंदी)	पत्ते	पत्तियों के रस का उपयोग सर्दी से रोकथाम के लिए किया जाता है।
साइनोडॉन डैक्टाइलान	पोएसी	अरुगमपिल्लू (तमिल) दूर्वा, दूब (हिंदी)	पत्ते	पत्तियों की चटनी से बने रस को सुबह-सुबह पेट साफ करने के लिए पीया जाता है।

वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
सिसस क्वाड्रैन्गुलेरिस	वाइटेसी	अरुकानि, पिरंतई (तमिल) अस्थिभंग, हड़जोड़	पत्ते और तना	कोमल तने का उपयोग भूख बढ़ाने, चटनी या थुवैयाल बनाने के लिए किया जाता है।
डाइगेरा मूरिकाटा	एमारेन्थेसी	तोय्या-के-किरई (तमिल) चंचली, लहसुआ, लटमआ हूरिया (हिंदी)	पत्ते	हीमोग्लोबिन बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है।
एक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा	ऐस्टेरेसी	करिसिलंगान्नि (तमिल) भ्रिंगराज, केशराज (हिंदी)	पत्ते	पत्तियों से निकाले गए तेल का उपयोग मुख्य रूप से बालों के विकास के लिए किया जाता है।
हिबिस्कस रोजा-सायनेन्सिस	मालवेसी	सेम्बरुट्टि (तमिल) जया, जसुम, गुड़हल (हिंदी)	फूल	फूलों के काढ़े का उपयोग रक्त की मात्रा बढ़ाने और शरीर की गर्मी को कम करने के लिए दिया जाता है।
मराया कोइनिंगाई	रूटेसी	करिवेपिल्लई (तमिल) मीठा नीम, करी पत्ता (हिंदी)	पत्ते और फल	पत्ते में एंटीऑक्सीडेंट होते हैं जो शरीर में मुक्त कणों को नुकसान पहुंचाने वाले कोशिकाओं से लड़ते हैं और करी पत्ते का उपयोग करके सभी खाद्य पदार्थ तैयार किए जाते हैं।
ओसिमम टेनुइफ्लोरम	लैमिएसी	करुणतुलसी (तमिल) तुलसी (हिंदी)	पत्ते	पानी में मिश्रित करके नियमित रूप से पीते हैं। बीज को पानी में भिगोया जाता है और शरीर की गर्मी को कम करने के लिए जिगरथंडा नामक शीतल पेय में मिलाया जाता है।
पाइपर बीटेल	पाइपरेसी	वेट्टिलाई (तमिल) पान (हिंदी)	पत्ते	पत्तियां उत्तेजक, एंटीसेप्टिक और सांस-फ्रेशनर के रूप में उपयोग की जाती हैं। सुपारी को एक लिपटे हुए पैकेज में ऐरेका नट और मिनरल स्लेड लाइम के साथ मिलाकर चबाया जाता है।
सेस्बेनिया ग्रैन्डीफ्लोरा	फैबेसी	सेवागट्टि (तमिल) गाछ मूंगा, अगस्ति (हिंदी)	पत्ते, फूल और फल	पत्ती, फूल, फल का उपयोग पोरियाल व्यंजन के रूप में नियमित रूप से भोजन में लिया जाता है।
सोलेनम नाइग्रम	सोलैनेसी	इरेकुलिकम (तमिल) मकीय, चिर्पोटी (हिंदी)	पत्ते और फल	पत्ती और फूल का उपयोग पोरियाल व्यंजन के रूप में नियमित रूप से भोजन में लिया जाता है। सूखे फल का इस्तेमाल करी बनाने में भी किया जाता है।

एलो वेरा (एल.) बर्म. एफ

अज़दिरकट्टा इंडिका ए. जेस

सिसस क्वाड्रांगुलारिस एल.

कोक्सीनिया ग्रैंडिस (एल.) जे. वोइट.

मुकिया मदरासपटाना (एल.) एम्. रोयं

सायनोडोन डॉक्टाइलोन (एल.) पेर्स.

केड्रोस्टिस फोएटिडिसिमा (जैक.) कॉग्न.

हेमीडेसमस इंडिकस आर. बी. आर

प्लेट - 1

कार्डियोस्पर्मम हैलिकैकाबम ल.

मोरिंगा ओलीफेरा लाम.

मुराया कोइनिगी (एल.) स्प्रेंग.

ओसीमम टेनुफ्लॉरम एल.

कोलियस एरोमैटिकस बेन्थ.

सोलानम नाइग्रम एल.

सोलानम टोरवाम स्व.

सोलानम ट्राईलोबाटम एल.

प्लेट - 2

वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
सोलेनम टोरवम	सोलैनेसी	सुंदक्कई (तमिल) जंगली बैंगन, मटर बैंगन (हिंदी)	फल	ताजा और सूखे फल का उपयोग करी तैयार करने में किया जाता है।
सोलेनम ट्राइलोबेटम	सोलैनेसी	टुडुवालाई (तमिल) कांटाकारी लता	पत्ते और फल	थुवैयाल (चटनी) और पत्ती का काढ़ा ठंड और खांसी से राहत के लिए उपयोग किया जाता है।
एगलि मारमेलोस	रूटेसी	विल्वम (तमिल) बेल (हिंदी)	पत्ते और फल	पत्तियों का उपयोग काढ़े के रूप में प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। फलों के रस का प्रयोग शरीर को शीतल रखने के लिए किया जाता है।
ऐलियम सेटाइवम	ऐलिएसी	पुंटु (तमिल) लहसुन (हिंदी)	शल्क कंद और तने	सभी प्रकार के भोजन तैयार करने में चटनी और कच्चे शल्क कंद का उपयोग किया जाता है।
करालूमा एडसेंडेंस	ऐपोसाइनेसी	कल्लिमुलैयन (तमिल) आक (हिंदी)	तना	ऊर्जा में वृद्धि करने में उपयोगी होते हैं।
हेमिडेस्मस इंडिकस	ऐपोसाइनेसी	नन्नारी, सुगंदिपु-ला (तमिल) अनंतमूल, दूधली (हिंदी)	जड़	मूत्र संक्रमण को कम करने के लिए शर्बत, रस का उपयोग किया जाता है।
मोरिंगा ओलीफेरा	मोरिंगेसी	मुरुंगाई (तमिल) सेंजन (हिंदी)	फूल और कली	थुवैयाल, पोरियाल और कढ़ी बनाने में उपयोग किए जाते हैं।
सिज़ीजियम क्यूमिनाइ	मर्टेसी	नगई (तमिल) जामुन (हिंदी)	फल	मधुमेह और कैंसर रोगियों द्वारा उपयोग किया जाता है।
मुकिया मदरासपटाना	कुकुरबिटेसी	मुचुमुचुक्काई (तमिल) बिलाड़ी, कचरी, मुसमुसा (हिंदी)	पत्ते	रसम तैयार करने में पत्तियों का प्रयोग किया जाता है।
केड्रॉस्टिस फोएटिडिसिमा	कुकुरबिटेसी	अप्पाकोवई (तमिल)	पत्ते	पत्तों का प्रयोग शारीरिक शीतलता एवं जोड़ों के दर्द निवारक का कार्य करता है।
डेलोनिक्स एलाटा	फैबेसी	पेरुंगोंद्राई, वाडानारायणन (तमिल) वयकरण, संदेश्रा	पत्ते	स्थानीय लोगों द्वारा रसम तैयार करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
ऐबूटिलॉन इंडिकम	मालवेसी	पनियारातुट्टि (तमिल) कंघी, बन कुकरा, बन कुइया (हिंदी)	पत्ते	पत्तों को बवासीर (फिल्टुला) के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।
ऐलो वेरा	लिलिएसी	कथलई (तमिल) कुमारी, घीकुमारी (हिंदी)	पत्ते	यह कैंसर को रोकने और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मदद करता है।
सेलोशिया अर्जेंटिया	एमारेन्थेसी	मकिलि-के-किराई, पन्नई किराई (तमिल) सिलमिली, गरखा, सिलवारी (हिंदी)	पत्ते	पत्तियों के साग (भाजी) का नियमित सेवन अल्सरेटिव कोलाइटिस, स्टामाटाइटिस और गले में खराश को दूर करने में मदद करता है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 22-25 (2023)

प्राकृतिक गोंद और राल : एक बहुपयोगी बहुलक

देबष्मिता दत्ता प्रमाणिक, सुश्रेया पाल व मानस भौमिक

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय, कोलकाता

पिछले कुछ दशकों में 'बहुलक' या 'पॉलीमर' दैनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में एक अनिवार्य वस्तु बन गया है। रासायनिक बहुलक का अधिक उपयोग विशेष रूप से औषधि, खाद्य, वस्त्र, प्रसाधन सामग्री आदि के उद्योगों के लिए काफी हानिकारक है क्योंकि ये उत्पाद सीधे मानव शरीर के संपर्क में आते हैं। इनमें से कई रासायनिक यौगिकों को गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं जैसे कैंसर, बांझपन और स्नायु संबंधित बीमारियों से जोड़कर देखा जाता है। प्राकृतिक तथा वनस्पतियों और प्राणियों से प्राप्त उत्पाद मनुष्य के लिए हमेशा सुरक्षित और अच्छे होते हैं। हाल के दिनों में, मानव शरीर पर कृत्रिम बहुलक के हानिकारक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक गोंद और राल को एक विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

गोंद और राल वनस्पतियों और प्राणियों से प्राप्त आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण उत्पाद हैं जिनका उपयोग प्राचीन काल से ही हो रहा है। वे अपनी जैव अनुकूलता और जैव विघटनशीलता के कारण कृत्रिम रासायनिक पॉलीमर की तुलना में बेहतर होते हैं। वर्षों से इन बहुलकों का प्रयोग औषधि, खाद्य, रबर, साबुन, पेंट और वार्निश आदि जैसे आधुनिक उद्योगों में अधिक मात्रा में किया जा रहा है तथा औद्योगिक विकास के साथ-साथ इन यौगिकों के उपयोग का दायरा बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक गोंद और राल उत्पादन की दृष्टि से फ्रांस (28.1%), भारत (14.1%), इंडोनेशिया (11%), अमेरिका (6.8%), जर्मनी (6.5%), ब्राज़ील (6.3%), थाईलैंड (3.4%), ग्रीस (2.6%), चीन (1.3%) आदि प्रमुख देश हैं। पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ने से इन प्राकृतिक उत्पादों की मांग और भी बढ़ रही है और भारत में नए संसाधनों का विकास हो रहा है। भारतीय प्राकृतिक राल एवं गोंद संस्थान, नामकुम, रांची, झारखंड (आई.सी.ए.आर.) की 2018-19 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, बिहार, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, जम्मू व कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल आदि प्रमुख प्राकृतिक गोंद और राल उत्पादक राज्य हैं जहां से वर्ष 2018-19 के दौरान लगभग 605037.70 टन प्राकृतिक गोंद और रेजिन (ग्वार गम, लाख, पाइन राल आदि) का उत्पादन हुआ था (आई. सी. ए. आर. रिपोर्ट, 2019)। मध्य और पश्चिमी भारतीय राज्यों में विशेष रूप से आदिवासी समुदायों के हजारों लोग आय के एक व्यवहार्य स्रोत के रूप में गोंद और राल के उत्पादन पर निर्भर हैं।

प्राकृतिक गोंद:

'गोंद' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'गोंद:' से हुई है जिसका अर्थ है 'चिपचिपा'। यह स्थानीय रूप से 'लासा' के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रकृति में स्वतंत्र रूप से उपलब्ध, पर्यावरण के अनुकूल और निराविषी पदार्थ है।

प्रकृति, वितरण और प्रकार

प्रकृति में पाए जाने वाले गोंद एक प्रकार के जटिल रासायनिक यौगिक हैं जिनमें कम सांद्रता पर जैल बनाने की क्षमता होती है। यह उच्च द्रव्यमानता सम्पन्न एक मिश्रण है जो प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, पोटैशियम, मैग्नेशियम, कैल्सियम, गैलेक्टोस, अरबिनोज, रैम्नोज, जाइलोस, गैलेक्टुरोनिक एसिड, एसिडिक पॉलिसैकराइड्स आदि से बना होता है। यह पौधे के ऊतकों के अपघटन द्वारा व मुख्य रूप से सेलुलोस गिरावट से उत्पन्न होता है। पादप के विभिन्न अंगों जैसे तने की छाल, फल, बीज, जड़ आदि से प्राकृतिक या कृत्रिम तरीके से गोंद स्रावित होता है जिसे 'गोंदार्ति (गमोसिस)' कहते हैं।

गोंद के प्रकार : विभिन्न मानदंडों के आधार पर गोंद निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं :

I. स्रोतों के आधार पर :

(1) प्राकृतिक गोंद - यह प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली लंबी श्रृंखला सम्पन्न पॉलिसैकराइड है जो कम सांद्रता पर भी विलयन के चिपचिपाहट को बढ़ाती है। इन्हें प्राकृतिक श्रोतों से अकृत्रिम और कृत्रिम दोनों तरीके से प्राप्त किया जाता है।

क) वनस्पतिजात : इन गोंदों की उत्पत्ति पौधों के विभिन्न भागों से होती है -

(i) पेड़ या झाड़ियों से पसीजते हुए नि:स्राव : 'अरबी गोंद' (बबूल के लगभग सभी प्रजातियां में उपलब्ध है); 'घट्टी गोंद' (*ऐनोगाइसस*

लैटीफोलिआ के सूखे नि:स्त्राव); 'कतीरा (त्रैगकांथ) गोंद' (लेग्युमिनोसी कुल की ऐस्ट्रागेलस वंश की कुछ प्रजातियों से नि:शृत सूखा नि:स्त्राव); 'कराया गोंद' (स्टरक्यूलिएसी कुल के पौधे से नि:शृत गोंद)।

(ii) बीज गोंद : 'गुआर गोंद' (लेग्युमिनोसी कुल की *सायमॉप्सिस टेट्रागानोलोबा* प्रजाति से नि:शृत रिसाव); 'लोकस्ट बीन गोंद' (कैरब पौधे के बीज से स्रावित यौगिक)।

(iii) अर्क : लार्च गम (*लैरिक्स अरबिनोज़*), पेक्टिन (सेब, खुबानी, चेरी, गाजर, संतरे आदि)।

ख) समुद्री शैवालजात : अगर-अगर (ग्रासुलेरिया, जिलीडियम), कैरागीन (आयरिश मॉस या *कोन्ड्रस क्रिस्पस*), एल्जिनिक एसिड (भूरे शैवाल की प्रजातियां) और लैमिनेरिन (भूरे शैवाल की प्रजातियां जैसे *लैमिनैरिया डिजिटाटा*, *लैमिनैरिया जैपोनिका* एवं फ्यूकस शैवाल)।

ग) प्राणिजात : चिटिन, काइटोसैन, कॉनड्रॉइटिन सल्फेट और हायल्यूरॉनिक एसिड।

घ) जीवाणु और कवकजात : जैन्थोन, डेक्सट्रान, लेंटीनिन, क्रेस्टीन, ग्लाइकन, ईस्ट, पुल्लूलान आदि।

(2) प्रसंस्कृत गोंद - रासायनिक रूप से परिवर्तित प्राकृतिक गोंद जैसे सेलूलोज़ या स्टार्च।

(3) कृत्रिम गोंद - पूरी तरह से कृत्रिम तरीके से संश्लेषित यौगिक जैसे पॉलीविनाइल पाइरोलिडोन, पॉलीइथाइलीन ऑक्साइड आदि।

(4) आंशिक कृत्रिम गोंद - प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले यौगिक का रासायनिक तरीके से व्युत्पादित यौगिक जैसे स्टार्च एसीटेट, स्टार्च फॉस्फेट, कार्बोक्सी मिथाइल सेलुलोज, हाइड्रॉक्सी इथाइल सेल्यूलोज, मिथाइल सेलुलोज आदि।

II. आयनी आवेश के आधार पर:

(1) अनायनी गोंद : ये किसी भी प्रकार के आयनी आवेश वाले अवयवों के लिए अनुकूल होते हैं जैसे ग्वार गोंद, लोकस्ट बीन गोंद आदि।

(2) ऋणात्मक गोंद : ये ऋणात्मक आवेश वाले यौगिक होते हैं जैसे त्रैगकांथ गोंद, अरबी गोंद, कराया गोंद आदि।

III. घुलनशीलता के आधार पर:

(1) घुलनशील गोंद : पानी को अवशोषित करके जैल बनाते है जैसे अरबी गोंद, त्रैगकांथ गोंद, घट्टी गोंद, कराया गोंद आदि।

(2) अघुलनशील गोंद : न घुलने वाले या केवल विशिष्ट तापमान पर ठंडे पानी या जैविक द्रावकों में घुलनशील जैसे लोकस्ट बीन गोंद, गुयार गोंद, सिरीश के गोंद आदि।

उपयोग

प्राचीन काल में वस्तुओं को जोड़ने के लिए प्राकृतिक गोंद का उपयोग किया जाता था। इसके अलावा औषधि (जैसे 'लेप' आदि) और कुछ खाद्य उत्पादक उद्योगों में इसका उपयोग होता था। हाल के दिनों में, गोंद के उपयोग की परिधि बृहत्तर हो गई है एवं अधिकांश क्षेत्रों में इसकी अलग ही पहचान बन चुकी है। वर्तमान समय में गोंद का उपयोग खाद्य, कॉस्मेटिक, कागज, फार्मास्युटिकल, बायोमेडिकल आदि उद्योगों में किया जाता है। यह अच्छा द्रावक, स्थिरक, प्रशामक होता है जो कागज उत्पादन में सहायक, बेकरी व कन्फेक्शनरी में कलई और बाइंडिंग करने वाले घटक के रूप में, ताज़ी सब्जियों, फल, मांस आदि उत्पादों का शेल्फ लाइफ बढ़ाने तथा मादक और गैर-मादक पेय पदार्थों में स्वाद बढ़ाने के लिए उपयोगी होता है। इसका प्रयोग कैंडी और च्युइंग गम में ग्लेज़िंग एजेंट, कैप्सूल, हाइड्रोजेल तथा जेल बनाने में प्रभावी रूप से किया जाता हे।

राल या रेज़िन

'रेजिन' शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच 'रेजीने' से हुई है जो मूल रूप से लैटिन "रेजिन" से आगत शब्द है।

प्रकृति, वितरण और प्रकार

राल पौधों के ऊतकों से नि:शृत उपापचयी उप-उत्पाद हैं जो या तो प्राकृतिक रूप से या चोट या बीमारी के परिणामस्वरूप निकलते

हैं। ये पानी में अघुलनशील तथा अल्कोहल, ईथर आदि जैव द्रावक में घुलनशील एवं आमतौर पर टेरपीन के ऑक्सीकरण उत्पादों के रूप में उत्पन्न होते हैं। ये कठोर या अर्ध कठोर, आकारहीन उत्पाद हैं जो रेजिन एसिड, रेजिन एस्टर, रेजिन अल्कोहल आदि से बनते हैं। कुछ विशिष्ट पेड़ों जैसे सीडर, फिर, पाइन, जुनिपर, स्प्रूस, बर्च, विलो, बलसम आदि की विशेष नलिकाओं या ग्रंथियों में राल उत्पन्न होते हैं। पौधों से जनित राल के अलावा प्रकृति में एक और ख़ास प्रकार की राल पाई जाती है जिसे 'शेलैक' या 'लाख' के नाम से जाना जाता है। यह लाख कीड़ों की त्वचा से स्रावित होती है।

प्लेट 1. प्राकृतिक गोंद और राल 1. *एकेशिया नौलिटिका* (बबूल) 2. *कॉमीफोरा वाइटी* (गुग्गुल) 3. *मोरिंगा ओलीफेरा* (सहजन) 4. उत्तम शेलैक 5. गट्टा पर्चा 6. ओलोयोरेजिन (*पाइनस वालिचियाना*)

रेज़िन के प्रकार : राल को तीन अलग-अलग तरीकों से वर्गीकृत किया जाता है :

I. स्रोतों के आधार पर:

क) वनस्पतिजात : – i. कोनिफेरस राल (कॉलोफोनी); ii. बेरबेरीडेसी राल (पोडोफिलिन) और iii. जाइगोफिलेसी राल (ग्वाएकम)

ख) प्राणिजात – ऐसे राल केर्रिया, टाकरडीए एवं अन्य लाख के कीड़ों से निकलते हैं। इन कीटों के पोषक पौधों में *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (ढाक, पलाश), *ज़िज़िफ़स ज़ाइलोपाइरस*, *ज़िज़िफ़स जुजुबा* (बेर), *फाइकस रिलीजिओसा* (पीपल), *ऐकेशिया निलोटिका*, कैजेनस कैजान (अरहर, तूअर) आदि प्रमुख हैं।

II. उपस्थित प्रमुख रासायनिक यौगिकों के आधार पर : रेसीनलिक एसिड, रेज़िन एसिड, रेज़िन एलकोहॉल, रेज़िन एस्टर, निष्क्रिय रेज़िन आदि।

III. राल के मुख्य घटकों के भाग के आधार पर : ओलियो रेज़िन, ओलियो-गोंद-रेज़िन, गोंद- रेजिन, ग्लूको रेजिन, ग्लाइको रेजिन, बलसम आदि।

उपयोग

प्राकृतिक राल व इसके उपयोग का एक बहुत लंबा इतिहास है जिसे प्राचीन ग्रीस, रोम और मिस्र देशों में प्रलेखित किया गया था। प्राकृतिक राल पेंट और वार्निश, लासा, अतर, सौंदर्य प्रसाधनी, दवा आदि उद्योगों के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। 'एम्बर', एक राल जीवाश्म है जो पुरातनता से लेकर वर्तमान समय तक बहुत मूल्यवान है और विभिन्न प्रकार की सजावटी वस्तुओं को बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।

औद्योगिक अनुभाग भारतीय संग्रहालय में गोंद और राल का संग्रह

औद्योगिक अनुभाग भारतीय संग्रहालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता की वानस्पतिक गैलरी भारत में गोंद और राल संग्रह के सबसे बड़े भंडारों में से एक है जहां लगभग 545 गोंद और रेजिन के संग्रह उपलब्ध हैं। इस गैलरी में मुख्यत: बबूल से उत्पन्न गोंद का समृद्ध संग्रह है जो बबूल की विभिन्न प्रजातियों से निकाले गए हैं जैसे *ऐकेशिया कटेचु*, *ऐकेशिया निलोटिका*, *ऐकेशिया फार्नेसिआना*, ऐकेशिया लियूकोफ्लोइया, *ऐकेशिया जैकमोंटी*, *ऐकेशिया सेनीगल*, *ऐकेशिया मॉडेस्टा* आदि। इसके अलावा, एबेलमोस्कस गोंद (*एबेलमोस्कस एस्कुलेंटस*), अल्बिजिया गोंद (*ऐल्बिजिया जीगिया*), बादाम गोंद (*प्रूनस डल्सिस*), हींग गोंद (*फेरुला फीटिडा*), ढाक या पलाश गोंद (*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*), काजू गोंद (*ऐनाकार्डियम आक्सीडेन्टेल*), देकामाली गोंद (*गार्डेनिया गम्मीफेरा*), डामर गोंद (*शोरिआ* या *होपिआ* प्रजाति के पौधे), घट्टी गोंद (*ऐनोगाइसस लैटिफोलिआ*), ग्वार गोंद (*सायमॉप्सिस टेट्रागनोलोबा*), गुग्गुल गोंद (*कॉमीफोरा वाइटी*), किनो या विजयसार गोंद (*टेरोकार्पस मार्सूपियम*), सहजन गोंद (*मोरिंगा ओलीफेरा*), शल्लकी गोंद (*बासवेलिया सेरेटा*), त्रैगाकैंथ गोंद (*ऐस्ट्रागेलस गम्मीफर*), कराया गोंद (*फर्मियाना सिम्प्लेक्स*) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहां भारत के विभिन्न क्षेत्रों से किए गए संग्रहों के अलावा बर्मा, पाकिस्तान और बलूचिस्तान से किए गए कई विदेशी संग्रह उपलब्ध हैं। प्राकृतिक राल में लाख, शेलैक, स्टिक लाख, बटन लाख, ओलियो रेज़िन, गोंद रेज़िन आदि का समृद्ध संग्रह है। इस संग्रहालय का सबसे पुराना संग्रह वर्ष 1891 का है जो बबूल की दो प्रजातियों (*ऐकेशिया ल्यूकोफ्लोआ* और *ऐकेशिया फार्नेसियाना*) के गोंद व रेज़िन के नमूने हैं। इसके अलावा वानस्पतिक गैलरी में प्राचीन 'गट्टा पर्चा' का एक नमूना है जो वर्ष 1883 में कलकत्ता अन्तर्जातिक प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया था (**प्लेट 1**)।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 26-27 (2023)

गृह वाटिका (होम गार्डेन) : लोक स्वास्थ्य, वित्तीय विकास और सामाजिक उन्नति का स्रोत

विजय व छाया देओरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, आधारभूत संरचनाओं का विकास, विश्व स्तर पर आम हो चुकी "जीवनशैली संबंधी बीमारियां" जैसे हृदय रोग, स्ट्रोक, अवसाद, मधुमेह और मोटापा लोक स्वास्थ्य के प्रमुख मुद्दे बनते जा रहे हैं। जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ती जा रही है, भोजन और आवास की समस्या अत्यंत विकराल रूप धारण करती जा रही है। ऐसी स्थिति में गृह वाटिका वास्तव में हमें प्रकृति के साथ जोड़े रखने में बहुत ही कारगर साबित हो रही है। गृह वाटिका से हम संधारणीय विकास और स्वास्थ्य के तीन प्रमुख स्तंभों जैविक आश्वस्ति, सामाजिक उन्नति एवं वित्तीय विकास को आसानी से हासिल कर सकते हैं। गृह वाटिका मनुष्य की सामाजिक और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को पूरा करती है। दूसरी ओर, हाल ही में कोविड-19 महामारी के दौरान लोगों की भोजन तक पहुंच सीमित हो गयी थी तथा बहुत से लोगों ने अपनी नौकरियां भी गवां दी थी। तब गृह वाटिकाओं ने अनगिनत परिवारों के सदस्यों की वित्तीय स्थिति को उन्नत करके उन्हें मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्वास्थ्य लाभ के अवसर भी प्रदान किए। यह भारत जैसे अधिकांश विकासशील देशों में महिलाओं को सशक्त एवं आत्म निर्भर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

हाल के दिनों में गृह वाटिका एक व्यावहारिक विचार के रूप में उभरकर सामने आई है जिसका उदेश्य भारत जैसे विकासशील देशों में लोगों के लिए पर्याप्त स्थानीय खाद्य उत्पादन, खाद्य सुरक्षा का विस्तार, आहार सुरक्षा, पोषण के नए स्रोतों का उपयोग, भोजन में वृद्धि, प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार और आय स्त्रोत के सृर्जन में वृद्धि करना है। पारिवारिक उद्यान में पौधारोपण करके अपने उत्पादों से अतिरिक्त आय अर्जित करके जहां एक ओर घर की वित्तीय स्थिति सुधारी जा सकती है, वहीं दूसरी ओर इससे पर्यावरण के सरंक्षण में भी मदद मिलती है। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के व्यापार में संभवतः गृह वाटिका के जैविक उत्पादों में अधिक वृद्धि हो रही है। गृह वाटिकाएं आजीविका चलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं तथा साथ ही खाद्य सामग्री पर होने वाले घरेलू खर्च पर भी बाज़ार की तुलना में कम होने लगे हैं। विकासशील देशों में बहुत से लोग अब घरेलू बागवानी की सहायता से प्रत्यक्ष स्रोत के रूप में अपना स्वयं का व्यवसाय शुरू करके अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं तथा साथ ही इसके माध्यम से नए रोजगार भी पैदा हो रहे हैं। गृह वाटिका की सहायता से जहां कृषि उत्पाद से संबंधित बड़ी-बड़ी कम्पनियों का विस्तार हुआ है, वहीं ग्रामीण व शहरी लोगों को अपने कुटीर उद्योगों को स्थापित करने में भी बड़ी सफलता प्राप्त हुई है।

गृह वाटिका एक प्रकार की बहुफसली प्रणाली है, जिसमें कृषि प्रणाली और पशुपालन दोनों को एक साथ एक ही भूमि क्षेत्र पर सम्मिलित रूप से किए जा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू बगीचों की खेती से बागवानी फसलों के साथ-साथ मशरूम, मधुमक्खी पालन, छोटी-छोटी मछलियों वाले तालाबों, पशुपालन और मुर्गीपालन से सार्वभौमिक विकास होता है। गृह वाटिका ग्रामीण क्षेत्रों में घर के आंगन या इसके पास ही स्थित होनी चाहिए तथा उसमें विभिन्न बागवानी फसलों जैसे सब्जियों, फलों, बेलों, औषधीय पौधों, वर्ष में एक बार फलन और पुष्पन करने वाले सुगन्धित व सजावटी पौधों के साथ-साथ घरेलू उपयोग के पेड़ों को उगाया जा सकता है। कंटीली सुगन्धित व औषधीय झाड़ियों और वृक्षों को बगीचे के किनारे लगाने से उपज को पालतू और जंगली जानवरों से नुकसान पहुंचने से बचाने के साथ-साथ तेज़ हवाओं और अधिक तापमान से बचाया जा सकता है।

शहरी क्षेत्रों में जगह की कमी होने के कारण हम टेरेस उद्यान, बालकनी या किचन गार्डन बना सकते हैं। बालकनी में छोटे पौधों के लिए हम छोटे व मध्यम आकार के मिट्टी या प्लास्टिक के गमलों और फलों की टोकरियों का इस्तेमाल करके अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में होने वाले फल व सब्जियां उगा सकते हैं। मकान के टेरेस के आकार के अनुसार हम क्यारियां भी बना सकते हैं, लम्बाई व चौड़ाई के अनुरूप ईंटो की मदद से क्यारियां बनाई जा सकती हैं, जहां पानी की निकासी भी नजदीक हो तथा दिन में कम-से-कम 4-5 घंटे की धूप मिलती हो। सतह पर हरितगृह में प्रयोग होने वाली जालियां बिछायी जाती हैं तथा इसे लगभग एक फीट की ऊंचाई तक बलुई मिट्टी, वर्मीकम्पोस्ट, कोकोपिट, सरसों की खली एवं जैविक खाद के मिश्रण से भर दिया जाता है। क्यारियां तैयार हो जाने के बाद उनमें मिर्च, बैंगन, कद्दू, धनिया, पालक, बीन्स, गाज़र, सलाद पत्ता, गोभी, ब्रोकली, टमाटर, ग्राफ्टेड लीची, ग्राफ्टेड नींबू एवं बहुत सी प्रोटीन युक्त फसलों के बीजों को उगाया जा सकता है। फसलों को कीटों और संक्रमण से बचाने के लिये विभिन्न प्रकार के कीटनाशक जैसे नीम खली और अन्य रोग निरोधक दवाइयों का छिड़काव समय-समय पर करते रहना चाहिये। जहां तक संभव हो सके, गृह वाटिकाओं में जैविक खाद का ही प्रयोग करना चाहिए क्योंकि रासायनिक खाद के अधिक प्रयोग से मिट्टी के पोषक तत्वों में असंतुलन पैदा हो जाता है, जो फसलों को हानि पहुंचा सकता है।

प्लेट 1. 1-फलों की पेटी में बैंगन 2- गमले में नींबू 3-4 टेरेस बेड में खीरा 5- गमले में टमाटर 6- फलों की पेटी में मिर्च 7- टेरेस बेड में गाजर

वैश्विक स्तर पर अकाल, कुपोषण और भुखमरी बहुत तेजी से दस्तक दे रही है। पौधे मानव के लिए औषधि का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं तथा सभी जीवित प्राणियों और पशुओं का जीवन इसी पर निर्भर है, तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गृह वाटिका मानव और पौधों के बीच पारस्परिक निर्भरता और स्थिरता की प्रमुख आधारशिला है। कुछ कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि घरेलू बागवानी सूक्ष्म कृषि पारिस्थितिकी तंत्र है, जो कृषि जैव विविधता के कई घटकों से समृद्ध है। इसके इतने महत्व के बावजूद, घरेलू बागवानी के वैज्ञानिक, समाजिक और आर्थिक योगदान के संबंध में अभी तक सबसे कम अध्ययन किए गए हैं। गृह वाटिका को समष्टि अर्थशास्त्र में हमेशा से उपेक्षित किया गया है। लेकिन समय के साथ शोधकर्ताओं और स्वास्थ्य चिकित्सकों के बीच गृह वाटिकाओं जैसी गतिविधियों से प्राप्त संभावित स्वास्थ्य तथा वित्तीय लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ी है। हाल ही में भारत सरकार ने मिशन लाइफ के तहत दैनिक प्रयोग में आने वाले प्रोटीन युक्त फल एवं सब्जियां जैविक तरीके से गृह वाटिकाओं में उगाने की बात पर जोर दिया है। उसके बाद से ही गृह वाटिकाओं को जैविक खाद्य उत्पादन के लिये लोग अपनी जीवनशैली में तेज़ी से शामिल कर रहे हैं।

प्लेट 1 में गृह वाटिका में उगाई गई कुछ सब्जियों को दर्शाया गया है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 28-29 (2023)

श्लीचेरा ओलियोसा (कुसुम) के बीजों से पारंपरिक तरीके से तेल प्राप्त करने की विधि

रंजना जामुदा व एल. रासिंगम
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद

भारत औषधीय जड़ी-बूटियों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। ग्रामीण क्षेत्रों की 70 प्रतिशत आबादी पारंपरिक चिकित्सा पद्धति पर निर्भर है। एक साथ कई उत्पादों के लिए उगाए जाने वाले पेड़ों को बहुउद्देशीय पेड़ के रूप में जाना जाता है, इस शब्द का प्रयोग कृषि-वानिकी में किया जाता है। इन बहुउद्देशीय पेड़ों की श्रेणी में कई पेड़ हैं जिनमें *श्लीचेरा ओलियोसा* (कुसुम) भी शामिल है। सैपिन्डेसी कुल की प्रजाति *श्लीचेरा ओलियोसा* एक विशालकाय वृक्ष है। यह आमतौर पर भारत के कई राज्यों में पाया जाता है। इसका उपयोग भोजन, चारे, ईंधन की लकड़ी, दवाईयों और उद्योगों के कच्चे माल आदि के रूप में किया जाता है। यह उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाने वाला मध्यम से बड़े आकार का, बहुवर्षीय घना वृक्ष है जो 35- 45 फीट की ऊंचाई तक बढ़ता है। कुसुम के वृक्ष लाह की खेती में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। *श्लीचेरा ओलियोसा* (कुसुम) का तेल खाद्य नहीं है क्योंकि इसकी बीजों में सायनोजेनिक यौगिक पाए जाते हैं, जो मानव उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। यह तेल शरीर की त्वचा और बालों के लिए अच्छा होता है। कुसुम के वृक्ष की लकड़ी फर्नीचर उद्योगों में भी अत्यधिक मूल्यवान है। आदिवासी संस्कृति में पारंपरिक रूप से कुसुम के बीज से तेल निकाला जाता है और इस तेल का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। पशुओं के चारे के लिए इनकी पत्तियों का उपयोग किया जाता है और पके फल खाद्य होते हैं।

कुसुम के वैज्ञानिक नाम *श्लीचेरा ओलियोसा में श्लीचेरा* स्विस वनस्पतिशास्त्री जे.सी. श्लीचर के नाम और लैटिन शब्द *ओलियोसा* (तेल) पर आधारित है। *श्लीचेरा ओलियोसा* के फल सामान्य तौर पर अंडाकार, दीर्घ वृत्ताभ से उपगोलाकार, एक बीज वाले और कभी-कभी दो बीज वाले, शीर्ष नुकीले तथा पीले और हरे रंग के होते हैं। बीजों में बीजावरण उपगोलाकार, भूरे और चिकने होते हैं जिनमें रसीले पीले रंग के बीजोंपांग होते हैं। कुसुम के फल खाद्य होते हैं। लेकिन बीजों का तेल खाद्य नहीं होता है। इस पेड़ को आमतौर पर लाह के उत्पादन के लिए लाह कीड़ों को पालने के उद्देश्य हेतु जाना जाता है। लाह के उत्पादन से झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में लाखों गरीब भारतीय किसानों को आजीविका प्राप्त होती है।

कुसुम से तेल निकालने की विधि और सामग्रियां :

झारखंड राज्य के 'हो' जनजाति के लोग पारंपरिक रूप से तेल निष्कर्षण के दो सरल चरण अपनाते हैं-

- पहला चरण- बीजों को तैयार करना।
- दूसरा चरण- बीजों से तेल निकालना।

सबसे पहले बीजों को कुछ समय के लिए धूप में सूखने के लिए रखा जाता है जिससे कि ये सारे बीज गर्म हो सके (गर्म बीज आसानी से टूट जाते हैं)। पत्थर के एक बड़े टुकड़े की सहायता से धीरे-धीरे बीजों को पृथ्वी की सतह पर बल देकर दबाया जाता है जिससे भूरे बीज का आवरण फट जाता है और बीजपत्र बाहर आ जाते हैं। भूरे बीज का आवरण भंगुर होता है और हल्का दबाव देने से ही टूट जाता है और एक 'यू' आकार का अन्तर्बीज सामने आ जाता है। बीजावरण के बड़े टुकड़ों को अलग करके पारंपरिक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण "शैल और तुकू" की मदद से चूर्ण के रूप में परिवर्तित किया जाता है। "शैल और तुकू" ओखल और मूसल के सिद्धांत पर कार्य करता है। चूर्ण को विसंयोजन विधि से भाप से पकाने के लिए अलग किया जाता है।

दूसरे चरण में एक बर्तन में 40% पानी आग पर गरम करने के लिए रखते हैं। एक बड़े आकार की छलनी (बांस से तैयार) को बर्तन के ऊपर रखा जाता है, थोड़े से पुआल और गीली मिट्टी की मदद से बर्तन के मुंह के किनारों को बंद कर दिया जाता है। फिर इस छलनी में बीजों के चूर्ण को भरकर ढक्कन से ढक देते हैं। 10-15 मिनट बाद करछुल से हिलाकर देखते हैं कि यह पककर नरम हुआ या नहीं। अब नरम हुए गर्म और पके हुए चूर्ण को बांस के सूप में निकालते हैं। इसे *बौहिनिया वहली* (मलूंगर/मालू) की लताओं से बनी एक विशेष प्रकार की कटोरी जैसी संरचना वाली बर्तन में भर दिया जाता है, जिसे 'हो' जनजाति के लोग "कुली" कहते हैं। बीजों के चूर्ण से भरी 'कुली' को मशीन

प्लेट 1: 1. पेड़, 2. कच्चे फल, 3–4. बीजों की पिसाई, 5. फटकना, 6–7. पकाना, 8. कुली, 9. भरना, 10–11. यंत्र, 12. तेल निकालना, 13. तेल।

में डालकर तेल निकाला जाता है। दो-दो कुलियों को आमने-सामने इस प्रकार से रखा जाता है कि दोनों एक- दूसरे के मुंह को पूरी तरह ढक लेते हैं। बीजों के चूर्ण से भरी कुलियों को लोहे से बनी यंत्र 'जांती' में रखकर उस पर लोहे की प्लेट लगाकर ऊपर से नीचे की ओर पेंच से दबाया जाता है। कुली पेंच की दबाव में नीचे की ओर दबने लगता है। इस प्रकार पेंच को हाथों से घुमाते हुए तेल निकाल कर एकत्र किया जाता है। इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराया जाता है। इसके बाद तेल उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। (प्लेट 1)

विश्व की कुल आबादी का लगभग 60 प्रतिशत लोग आज भी पारंपरिक चिकित्सा का उपयोग करते हैं। न केवल विकासशील देशों में, बल्कि विकसित देशों में भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य उपचार में इनका उपयोग किया जाता है। *श्लीचेरा ओलियोसा* (कुसुम) त्वचा के साथ -साथ बालों के लिए भी बहुत फायदेमंद है, यह त्वचा को मुलायम और चिकना रखता है। इस वृक्ष की लकड़ी का उपयोग फर्नीचर बनाने के लिए भी किया जाता है और ग्रामीण क्षेत्रों में इसे जलावन के रूप में उपयोग किया जाता है। कुसुम के बीज से निकाले गए तेल की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि बीज कितने साल पुराने हैं और उनकी गुणवत्ता क्या है। यदि बीज ताजे (हाल ही में एकत्र किये गये) हैं, तो इससे अच्छी मात्रा में तेल प्राप्त होता है। कुसुम का पेड़ औषधीय उद्देश्य, उद्योगों और लाह की खेती के लिए अत्यधिक उपयोगी है। पत्तियों में कम टैनिन होता है और इसलिए उन्हें जानवर चारा के रूप में खाकर आसानी से पचा सकते हैं। कुसुम के पौधे में डीजल के समान कई गुण होते हैं, इसलिए इसमें बायोडीजल उत्पादन की भी संभावनाएं हैं। इतना लाभप्रद होने के बावजूद, कुसुम के वृक्ष को अभी तक उतनी लोकप्रियता नहीं मिली है, जितना इसे मिलनी चाहिए।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 30 (2023)

अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह की बहुपयोगी वनस्पति नोनी (भारतीय शहतूत) : परिचय और संरक्षण

लाल जी सिंह, * शिवलक्ष्मी, पंकज अरविंद ढोले, प्रकाश होरो, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी व महादेवकुमार एस.

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर
*जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय, पोर्ट ब्लेयर

नोनी (*मोरिन्डा सीट्रीफोलिया* एल.) कॉफी कुल रूबिएसी का एक बहुपयोगी पादप है जिसे पादप वर्गिकी में *मोरिन्डा* एल. वंश के अंतर्गत रखा गया है। *मोरिन्डा* वंश के नाम की उत्पत्ति लैटिन भाषा के मोरस शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ मल्बरी है जो इस पौधे के फल की आकारिकीय संरचना को दर्शाता है। इसे इंडियन मलबेरी, कैनेरी वूड, ग्रेट मोरिंडा, बीच मलबेरी और चीज़ फ्रूट जैसे 100 अलग-अलग नामों से जाना जाता है। नोनी (*मोरिन्डा सीट्रीफोलिया* एल.) एक छोटा, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय वृक्ष या झाड़ी है जिसके मूल प्राकृतवास का उल्लेख प्रशांत द्वीपीय क्षेत्र, दक्षिण पूर्व एशिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और भारत के कुछ भूभागों में मिलता है। वर्तमान में इसका वर्णन कैरीबिएन बहमास, बरमूडा, फ्लोरिडा, अफ्रीका, मेक्सिको, अमेरिका, बेनेजूवेला, सूरीनाम आदि भूभागों से किया गया है। जैव विकास में इसके जीवाश्मीय रिकार्ड का उल्लेख 56 से 33.9 मिलियन वर्ष पूर्व का मिलता है। इस पौधे के सम्पूर्ण भाग (फल, पत्ती, छाल, जड़ आदि) की बहुपयोगी क्षमता का उल्लेख मिलता है। इसके फल में पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा पाई जाती है और एक अच्छे इम्यून बूस्टर के रूप में इसका उल्लेख विविध औषधीय प्रणालियों में मिलता है।

मोरिन्डा सीट्रीफोलिया एल. (रूबिएसी)

अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह भारत के मुख्य भाग से अलग-थलग अवस्थित वह भूभाग है जो विश्व पटल पर अपनी ऐतिहासिक, भौगोलिक और जैव विविधता के लिए विख्यात है जहां पर *मोरिन्डा* की दो प्रजातियों (*मोरिन्डा सीट्रीफोलिया* और *मोरिन्डा अम्बेलाटा*) की प्राप्ति का विवरण मिलता है। विभिन्न औषधीय पद्धतियों में उल्लिखित नोनी (*मोरिन्डा सीट्रीफोलिया* एल.) की बहुपयोगी क्षमता की पुष्टि विभिन्न जैव-रासायनिक अध्ययनों से होती है और वर्तमान में इसकी गिनती एक अच्छे इम्यून बूस्टर और एंटीऑक्सीडेंट आदि गुणों वाले औषधीय वनस्पति के रूप में होती है। नोनी का सेवन ज्यादातर इम्यूनिटी बूस्टर जूस (टॉनिक) के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग रक्त शर्करा के स्तर को कम करने और कैंसररोधी क्षमता आदि के लिए किया जाता है। इसमें मिलने वाले विभिन्न लाभकारी घटक जैसे विटामिन-सी, बायोटिन, फोलेट, विटामिन-ई, फाइटो फ्लेवोनोइड, एंटीऑक्सीडेंट गुणों वाले कार्बनिक अम्ल आदि जैसे पोषक तत्व स्वस्थ लाल रक्त कोशिका संश्लेषण और रक्त संचार को ठीक रखने, बीमारियों से लड़ने वाली प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने, त्वचा और सिर की खाल, मासिक धर्म आदि से संबंधित विकारों, गठिया, अल्सर, अवसाद, मोच आदि को दूर करने में सहायक होते हैं और हृदय की सेहत को बनाए रखने में मदद करते हैं। वर्तमान में इसके फल से बना हुआ जूस ''नोनी'' टॉनिक के नाम से लोगों के बीच प्रसिद्ध है।

वर्तमान में यदि हम इसके प्राकृतवास की स्थिति पर गौर करें, तो हम पाते हैं कि बढ़ती हुई मानव जनसंख्या का दबाव इसके ऊपर निरंतर बढ़ता जा रहा है। ऐसी दशा में इसके संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। संरक्षण की दृष्टि से अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के क्षेत्रीय केंद्र की भूमिका नोनी के संरक्षण में बहुत अहम है। इन द्वीपों में धन्नीखाड़ी प्रायोगिक उद्यान तथा वृक्षकुंज में नोनी के संवर्धन और संरक्षण की भूमिका द्वीपवासियों के लिए पादप संरक्षण के लिए प्रेरणास्रोत है।

''पादप संरक्षण- जीवन संरक्षण''

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 31-32 (2023)

काफल : *मिरका एस्कुलेंटा*

हरमिन्दर सिंह, विजय, देबाला टुडू व एन. ऑडियो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

भारत का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र अपनी अनूठी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। यहां की प्राकृतिक और भौगोलिक सुन्दरता, जैव विविधता, सांस्कृतिक धरोहर और जनजातीय विविधता इस क्षेत्र को अनोखा व अद्वितीय बनाते हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले जनजाति वर्षों से प्रकृति और उसके सान्निध्य में पारस्परिक स्थिरता के साथ रह रहे हैं। यह स्थिरता उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों जैसे जंगली खाद्य फलों, सब्जियों, बीज, पत्तियों और लकड़ियों के अधिकतम उपयोग तथा स्थानीय समुदायों द्वारा वनों के संरक्षण के साथ-साथ उनके वनक्षेत्र में वृद्धि से आई है। वनों और स्थानीय जनजातियों के बीच पारस्परिक निर्भरता इस स्थिरता का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस लेख में हम ऐसे ही एक जंगली खाद्य फल, *मिरका एस्कुलेंटा* के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं, जो अपने स्वाद के अलावा और भी कई स्वास्थ्यवर्धक गुणों के लिए जाना जाता है। इस पेड़ के सभी भाग फल, तना, पत्तियों, जड़ों और छाल में कोई न कोई औषधीय गुण होने के कारण इसका व्यावसायिक महत्व बहुत अधिक है। हिमालयी क्षेत्र के लोग इसके फल को कच्चा खाते हैं या फिर विभिन्न उत्पादों जैसे सिरप, जैम, च्यवनप्राश और स्क्वैश बनाने के लिए प्रयोग में लाते हैं, जिनकी स्थानीय बाजार में अत्यधिक मांग है। इसलिए मेघालय और उप-हिमालयी क्षेत्र की स्थानीय जनजातियों के लिए यह एक संभावित आय सृजन का स्रोत भी है।

मिरका एस्कुलेंटा खासी जनजातीय महिला बाज़ार में बेचते हुए, 2. *मिरका एस्कुलेंटा* का फल

मिरका एस्कुलेंटा मिरीकेसी कुल का एक पतझड़ी वृक्ष है। मिरका वंश एक बड़ा समूह है जिसमें मिरीकेसी कुल की 49 से अधिक प्रजातियां शामिल हैं। यह मूलतः उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में समुद्रतल से लगभग 900–2100 मी. की ऊंचाई पर भारत के उत्तर में जम्मू व कश्मीर से लेकर उत्तर-पूर्वी राज्यों असम, मेघालय, नागालैंड, मिज़ोरम, मणिपुर इत्यादि और दक्षिण-पूर्व एशिया में पाया जाता है। भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र को इस वृक्ष का मूल प्राकृतवास माना जाता है। कुछ लोग इसे अनौपचारिक रूप से उत्तराखंड राज्य का राजकीय फल भी मानते हैं। फ्रांसिस बचानन-हैमिल्टन और डॉन डेविड ने पहली बार वर्ष 1825 में इस वृक्ष का वानस्पतिक विवरण दिया था। आज की तिथि में इस वृक्ष की चार किस्में हैं, जो भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में पाई जाती हैं। *एम. एस्कुलेंटा* 10-13 मीटर तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते भालाकार या अधोमुख अंडाकार होते हैं। इसकी छाल धुसर या भुराभ धुसर, फूल एकलिंगी, सफ़ेद व हल्के पीले और फल छोटे, चेरी के आकार एवं पक जाने पर हरे से लाल रंग के होते हैं।

अपने औषधीय गुणों के लिए जाना जाने वाला यह वृक्ष अंग्रेजी में बायबेरी और बॉक्स बेरी, असामी में नागाटेंगा, खासी में सोह-फी

और हिंदी में काफल के नाम से जाना जाता है। काफल की छाल, जड़ों और पत्तियों का उपयोग आमतौर पर पारंपरिक चिकित्सा में अस्थमा, खांसी, ब्रोंकाइटिस, अल्सर, सूजन, एनीमिया, बुखार, दस्त, कान, नाक और गले की समस्याओं सहित विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है। काफल के फल में विटामिन-सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिसके कारण इसे खाने वाले व्यक्ति की रोगप्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है। इसमें मैक्रोन्यूट्रिएंट और माइक्रोन्यूट्रएंट पाए जाते हैं जो रोजमर्रा के जीवन में सप्लीमेंट के तौर पर इस्तेमाल होते हैं। शोध में पाया गया है कि *एम. एस्कुलेंटा* में फाइबर और राख जैसी बहुत सी खुरदरी चीजों के साथ कैल्शियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज और आयरन जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व उपलब्ध होतें हैं।

मेघालय की खासी जनजाति इसकी छाल का उपयोग मछली मारने के लिए जहर के रूप में करते है। इसकी छाल से निकाले गए टैनिन का उपयोग चर्मशोधन और रंगाई पदार्थ के रूप में किया जाता है तथा लकड़ी और पत्तियों को चारे और ईंधन के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। इसकी छाल से बना काढ़ा माउथ फ्रेशनर के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है और इसका पेस्ट दांत दर्द में लाभकारी होता है। 'उम सो-ही' एक पारंपरिक शरबत है जिसे खासी जनजाति के लोग काफल के फल का रस निकाल कर बनाते हैं। नीचे दिए गए तालिका-1 में संक्षिप्त में यह दर्शाया गया है कि इस पेड़ के प्रत्येक भाग का किस-किस बीमारी के इलाज के लिये इस्तेमाल होता है।

तालिका 1: *एम. एस्कुलेंटा* के कुछ पारंपरिक इस्तेमाल संक्षिप्त में।

क्र. स.	उपयोगी भाग	उपचार
1.	पत्ती	पीलिया, बुखार, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस आदि।
2.	छाल	मानसिक रोग, हैज़ा, हृदय रोग, खांसी, शोफ, वायुनाशी, सड़न रोकने, दांत का दर्द, मोच या मरोड़, पीलिया, पेट दर्द, अलसर, रोगाणुरोधक आदि।
3.	फूल	कान दर्द, पेट रोग, पक्षाघात आदि।
4.	फल	ब्रोंकाइटिस, पेचिश, पीलिया, अलसर, बदन व सर दर्द आदि।
5.	कच्चा फल	कृमिनाशक आदि।

वास्तव में यह पेड़ एक लंबे अरसे से चिकित्सा जगत में बहुत प्रचलित रहा है। पुराने जमाने से ही लोग आयुर्वेद और यूनानी प्रणालियों में दवा बनाने के लिए इस पेड़ के विभिन्न हिस्सों का उपयोग करते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर च्यवनप्राश जो हमें शक्ति देता है, उसमें भी इस पेड़ का उपयोग होता है। फिर भी बहुत से लोग इसके गुणों से परिचित नहीं है। इसलिए *एम. एस्कुलेंटा* को भोजन, पोषण और औषधीय उपयोग हेतु मूल्यवान संपत्ति के रूप में इसकी अपार क्षमता को पहचान दिलाना अत्यंत आवश्यक है। वनों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समुदाय के लोग आय सृजन हेतु काफल के फलों और लकड़ियों का अत्यधिक मात्रा में दोहन कर रहे हैं जिसके कारण इस बहुमूल्य वृक्ष की जंगल में आबादी कम होती जा रही है। अतः इस प्रजाति के सतत उपभोग के साथ-साथ इसके संरक्षण की भी आवश्यकता है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 33-35 (2023)

डेल्फिनियम डेनुडेटम (जदवार): पश्चिमी हिमालय का संकटग्रस्त औषधीय पौधा

भावना जोशी, गिरिराज सिंह पंवार व सुशील कुमार सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र, देहरादून

डेल्फिनियम डेनुडेटम रैननकुलैसी (बटरकप) कुल की एक अत्यंत महत्वपूर्ण शाकीय प्रजाति है। यह एक संकटग्रस्त हिमालयी जड़ी-बूटी है जो किसी समय बहुतायत में पाई जाती थी। यह जड़ी-बूटी बहुवर्षीय है लेकिन कभी-कभी यह द्विवर्षीय या एकवर्षीय होती है। इसकी लंबाई सामान्यतः 40–80 सेमी तक होती है। इसका तना सीधा और ऊपर की तरफ पतला होता जाता है। इसका कंद पूर्ण रूप से भूरी नालाकार कोशिकाओं से ढका रहता है तथा इसमें नीले रंग के पुष्प पाए जाते हैं। पत्तियां आधारी होती हैं जिनका आकार हथेली के समान विभाजित होते हैं। इसमें पुष्पक्रम स्पाइक जैसे समूहों में पाया जाता है। इसमें पुष्पन अप्रैल से मई माह के दौरान होता है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* ज्यादातर नम छायादार भूमि के आसपास ही पाया जाता है और इसका गुणन केवल बीजों के माध्यम से होता है। इसके बीजों में कुछ ही समय के लिए अंकुरण क्षमता पाई जाती है। इसलिए बीजों को एक पात्र में सील करके 3 डिग्री तापमान में रखा जाता है और तापमान को 15 डिग्री से ऊपर नहीं पहुंचने दिया जाता है अन्यथा इन बीजों की अंकुरण क्षमता ख़त्म हो जाती है। यह बीज 2 से 9 हफ्ते बाद 15 डिग्री तापमान में अंकुरित होते हैं।

डेल्फिनियम डेनुडेटम को विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे अरबी (अंतिला सौदावी, बलूत एल अर्ध, 'जदवार'), आयुर्वेद (निर्विषा, निर्विषी), अंग्रेजी (लार्कस्पर), ग्रीक (सेतुरियस), नेपाली (निलोबिख), हिंदी (बसहा, निर्बासी, तार्बसी),

डेल्फिनियम डेनुडेटम का प्राकृतवास; 2. पुष्प; 3. फली; 4. बीज

मराठी ('जदवार' निर्बिशी, तेलगु में निर्विषी), तमिल और मलयालम (निर्बासी), कन्नड़ (निर्विषी), गुजराती (निर्विषी), फ़ारसी (माह परवीन, 'जदवार'), संस्कृत (जदवर, निर्विषी, विशालाकरानी), उर्दू ('जदवार'), यूनानी (सत्रियूस, 'जदवार' खतानी, मातिरयाक)। प्राचीन ग्रंथों और पारंपरिक फारसी चिकित्सा पद्धति के अनुसार *डेल्फिनियम डेनुडेटम* को एक हजार सालों से दवा के रूप में उपयोग किया जा रहा है। भारत में इसे आम भाषा में "जदवार" नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से ही यूनानी और आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में इस पौधे का उपयोग औषधीय जड़ी-बूटी के रूप में किया जाता है। आयुर्वेद में इसका उपयोग किसी भी प्रकार के जहर (खासतौर पर नसों और हृदय में फैलने वाले) को फैलने से रोकने में किया जाता रहा है। इसके न्यूरोप्रोटेक्टिव प्रभाव के कारण यह वात विकारों में भी अत्यंत लाभ पहुंचाने का काम करता है। आयुर्वेद में इसे "निर्विषा" नाम से भी जाना जाता है, जिसका अर्थ है विष के प्रभाव को समाप्त करना। आयुर्वेद में इसका उपयोग सर्पदंश, वत्सनाभ विष, तिल्पुष्पी (डिजिटेलिस) विषाक्ता और मकड़ी के काटने पर भी किया जाता है।

विश्व में रैननकुलैसी (बटरकप) कुल में 59 वंश और लगभग 25000 प्रजातियां (एकवर्षीय या बहुवर्षीय) हैं। पौधों का यह समूह उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध के ठंडे और समशीतोष्ण क्षेत्रों में बहुलता में पाया जाता है जबकि इसकी कुछ प्रजातियां उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण क्षेत्रों में भी पाई जाती हैं। *डेल्फिनियम* वंश रैननकुलैसी कुल की डेल्फिनी उपकुल के अंतर्गत आता है और इसमें 385 प्रजातियां हैं जो विश्वभर में उत्तरी समशीतोष्ण क्षेत्रों में पाई जाती हैं। पी० ए० मुंज (1967, 1968) के अनुसार, इस वंश की 244 प्रजातियां एशिया से ज्ञात हैं जिनमें से 27 प्रजातियों और 2 उपजातियों का वर्णन भारत से किया गया है। ये प्रजातियां भारत में समशीतोष्ण और हिमालय के अल्पाइन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में स्थानिक एकमात्र प्रजाति *डेल्फिनियम मालाबारिकम* है। हिमालय को *डेल्फिनियम* वंश का मूल प्राकृतवास माना जाता है। लेकिन इसकी प्रजातियां अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत के पश्चिमी हिमालय में भी पाई जाती हैं। पश्चिमी हिमालय में यह प्रजाति कुमाऊं से कश्मीर तक समुद्रतल से 8000-12000 फीट तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में घास के मैदानों में और ढलानों के आसपास पाई जाती है। इसके अलावा यह पंजाब, सिरमौर और लाहौल में भी पाई जाती है। *डेल्फिनियम* नाम की उत्पत्ति ग्रीक शब्द डॉलफिन से हुई है जिसका अर्थ अमृत है जबकि 'जदवार' अरबी भाषा से लिया गया एक फ़ारसी शब्द है जिसका अर्थ "शोधकारक या जहर" को मारने वाला होताहै। इसके मारक गुण के कारण भारत में 'जदवार' को नरबासी या निर्विषी नाम से भी जाना जाता है, जिसका अर्थ किसी जहर/ विष के प्रभाव को समाप्त करना है। इसका उपयोग ऐकोनाइट के नकारात्मक प्रभाव को अवरूद्ध करने के लिए भी किया जाता है। हिन्दू पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, 'जदवार' सामान्यतः ऐकोनाइट के आसपास के क्षेत्रों में पाया जानेवाला एकमात्र पौधा है जो बहुतायत में उगता है और इसके जहर के प्रभाव को समाप्त करने में कारगर है।

इस प्रजाति में विभिन्न प्रकार के क्रियाशील तत्व पाए जाते हैं, जैसे फ्लैवेनोइड, ट्रपिनोइड, एल्केलोइड आदि। 'जदवार' के जड़ का टुकड़ा एक छोटे जंतु के समान प्रतीत होता है और आकार में यह बहुत ही पतला होता है। यह उन स्थानों में बहुतायत में मिलता है जहां पर ऐकोनाइट पाया जाता है और ये उसकी वृद्धि को अवरूद्ध करता है। इब्न मसारजावैह की किताब में 'जदवार' को डोरोनिकम के समान प्रकृति वाला बताया गया है। परन्तु डोरोनिकम की प्रभावकारिता उससे कम होती है। इब्न ए सेना अदविया ए कलबिया नामक पुस्तक में इन्होंने 'जदवार' नामक पौधे का भी उल्लेख किया है जो हृदय संबंधी बीमारियों पर कारगर है। 'इब्न-ए-सेना' और 'इब्न-बैतर' पुस्तकों में इस पौधे को ऐकोनाइट और सर्प (वाईपर) के जहर के विरूद्ध काम करने की क्षमता वाला बताया गया है (अलीम व अन्य., 2020)। इसकी आकृति ऐरिस्टोलोकिआ की तरह दिखती है, परंतु आकार में बहुत छोटी होती है। प्रसिद्ध फ़ारसी हाजी जेन एल अत्तैर ने 'जदवार' की जड़ की आकारिकी को *साइकैस* की तरह माना है, यह उसकी तरह कठोर होता है और इसका भीतरी रंग बैगनी होता है। उन्होंने ये भी बताया है कि कई लोग 'जदवार' के नाम पर सफ़ेद, बैगनी, काली और पीली दवाएं भी बेचते हैं जिसका दुष्परिणाम अत्यंत हानिकारक हो सकता है।

पश्चिमी हिमालय में पाई जाने वाली प्रजाति *डेल्फिनियम डेनुडेटम* भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में उपयोग होने वाली सबसे महतवपूर्ण दवाओं में से एक है। यह एंटीऑक्सीडेंट, एंटीकॉनवोलेंट, एंटीमाइक्रोबियल और अवसाद के निदान में कार्य करती है। 'जदवार' का संपूर्ण पौधा ही औषधीय उपयोगिता का है, लेकिन सबसे अधिक इसके कंद और बीज का उपयोग किया जाता है। इस पौधे के कंद भूरे रंग के होते हैं और विभिन्न प्रकार के रसायनों का संचरण करते हैं। इसमें मुख्यतः दो घटक डेलफीनिन और एस्टाफिस्ग्रीन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं और पेट संबंधी विकारों के लिए उपयोग किए जाते हैं। इसकी जड़ का उपयोग बुखार और गठिया से निजात पाने के लिए भी किया जाता है। विशेष रूप से इसको *ऐकोनिटम फेरॉक्स* के विष के विरुद्ध विषनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी जड़ों के ऐथनॉल अर्क को जीवाणुरोधी और एंटी फंगल गुणों के लिए प्रयोग किया जाता है। अधिकांश प्राकृतिक एल्केलोइड और उनके अन्य उत्पादों का उपयोग उनके जीवाणुरोधी गुण के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें पाए जाने वाले डाईट्रपीनोइड एल्केलोइड जिनमें 8 एसीटाइल हेटरोफिलिसिन,

एलकोलोइड विल्मोरियानोन और पैनिकुतिन शामिल हैं तथा कई मानव रोगजनक कवक के विरूद्ध एन्टीफंगल प्रभाव को दर्शाते हैं। इसके साथ ही इस पौधे की जड़ के अर्क को चांदी के नैनो पार्टिकल्स के साथ मिलाने पर यह मच्छर रोधी कार्य के अलावा *स्टैफाइलोकोकस औरिअस*, *ई. कोलाई*, *बैसिलस सिरिअस* और *स्यूडोमोनास* के विरूद्ध कारगर होता है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* की जड़ का एथेनलिक अर्क एल्कोहल के अधिक सेवन से लिपिड पर होने वाले ऑक्सीकरण को रोकने का काम करता है। इस प्रकार यह एल्कोहल के प्रयोग से होने वाले लीवर डिसफंक्शन के उपचार के लिए एक संभावित औषधि है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* के विभिन्न सक्रिय संघटकों (जैसे एल्केलोइड, प्रोटीन, एन्थरोकुईनोन, टरपिन, सैपोनिन, पालीफिनॉल फ्लैवेनोइड और वसीय अम्ल) में थकान दूर करने का गुण पाया जाता है। इसकी जड़ के पाउडर में एमेलीओरेट पाया जाता है जो शारीरिक, दिमागी और मानसिक थकान को दूर करने का काम करता है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* को ऐथनॉलिक मिश्रण में प्राथमिक एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करने वाले फ्री रेडिकल (अल्फा डाईफिनाइल बीटा पिक्राइलहाइड्रेजिल) और सुपर ऑक्साइड स्केवेंजर शामिल होते हैं, जबकि एथिल ऐसीटेट में प्राइमरी एंटीऑक्सीडेंट के रूप में हाइड्रॉक्सिल रेडिकल स्केवेंजर होते हैं। इसी प्रकार स्केवेंजर की जड़ में पाया जाने वाला एक मुख्य फायटोस्टेरोल बीटास्टेरोल जो आकारिकी में कोलेस्टरोल जैसा दिखता है और डी पी पी एच (अल्फा डाइफिनाइल बीटा पिक्राइलहाइड्रेजिल) माध्यम से निकले फ्री रेडिकल से सुरक्षा देने का काम करता है। इसके अलावा फ्लैवेनोइड भी एक एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करता है। वर्तमान में लोग हर्बल दवाओं का बढ़चढ़ कर सेवन कर रहे हैं जो शरीर को किसी भी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाती हैं। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* की जड़ का क्लोरोफॉर्म के साथ तथा ऊपरी भाग का मेथनॉल के साथ बनाया गया मिश्रण ल्यूकेमिया, अण्डाशय और स्तन कैंसर के इलाज़ में लाभप्रद है। कवर्सेटिन 'जदवार' में पाया जाने वाला एक मुख्य फ्लैवेनोइड है जो एंटी टयूमर का कार्य करता है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* पर किए गए कई शोध कार्यों से पता चला है कि इसमें विभिन्न प्रकार के यौगिक पाए जाते हैं जो एंटीकॉनवुलसेंट प्रभाव को दर्शाते हैं। इसी में से एक नया वर्ग जिसे एंटी-सीजुर कहते है, यह सोडियम चैनल को रोकने का काम करता है। साथ ही मिर्गी के दौरे को भी कम करने का काम करता है। एक शोध के अनुसार *डेल्फिनियम डेनुडेटम से* 1 बीटाहाइड्रॉक्सी और 14 बीटा एशिटायल कॉनडेलफिन, जदवारिन ए और बी, एल्केलाइड, आइसोटालाटीज़िडीन हाइड्रेटेड और डाईहाइड्रोपेंटागाईन निकाला गया है जो अल्जाइमर रोग के इलाज़ में कारगर है। इसी प्रकार पार्किन्सन रोग, जो उम्र बढ़ने के साथ-साथ दिमागी संतुलन को भी कम कर देता है, 'जदवार' का ऐथानोलिक मिश्रण इसके उपचार में प्रभावकारी है। अफीम आजकल नशा करने लिए उपयोग किया जाता है। परंतु ये लत शरीर के लिए अत्यंत हानिकारक है। 'जदवार' की जड़ का मेथनॉल में तैयार किए गए मिश्रण का उपयोग अफीम की लत को कई हद तक कम करने के लिए उपयोग किया जाता है। यह सामान्यतः अल्फा 7 निकोटिनिक एसीटायलकॉलिन नामक प्रापक (रिसेप्टर) को बंद कर देता है। इस तरह यह अफीम के विरूद्ध उसकी लत को कम करने हेतु एक विकल्प के रूप में भी काम करती है। 'जदवार' मानसिक विकारों के इलाज के लिए भी उपयोग की जाने वाली एक गुणकारी औषधि है। इसमें पाए जाने वाली कवर्सेटिन घबराहट और बेचैनी में अत्यंत कारगर है। यह एन मिथाइल डी अस्पर्टिक के प्रापक (रिसेप्टर) और नाइट्रिक ऑक्साइड के चक्र को कम करने का कार्य करता है जो अवसाद के मुख्य कारण हैं। चिंता आज की पीढ़ी की सबसे बड़ी समस्या है जिसके कारण लोगो में रक्त और हृदय संबंधी कई बीमारियां बढ़ रही है। सायकोट्रापिक दवाए आमतौर पर रोगियों को दी जाती है किन्तु इसके हानिकारक दुष्प्रभाव भी दिखते हैं। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* की जड़ का हाइड्रो ऐल्कोहलिक मिश्रण चूहों को देने से उनमें धीरे-धीरे लोकोमोटर गतिविधियां कम हो जाती है। यह गुण सामान्यतः दिमाग में पाए जाने वाले प्रापक (रिसेप्टर) गामा एमिनो बूटाईरिक एसिड/बेन्जो डाइएजेपैम का फ्लैवेनोइड, टेनिन, एल्कलोइड, ट्राइट्रपिनोइड और स्टेरोइड के बीच बने समूह के कारण होता है।

डेल्फिनियम डेनुडेटम स्थानीय लोगों द्वारा अति उपयोग की जाने वाली पारंपरिक हर्बल दवा है जो विभिन्न बीमारियों के इलाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका प्रकृति से अत्यधिक दोहन होने के कारण इस प्रजाति पर संकट गहरा रहा है। इसलिए इस प्रजाति को संरक्षित करके इसके गुणन की नितांत आवश्यकता है और साथ ही इसके दोहन को कम करने के लिए स्थानीय लोगों में जन जागरूकता फैलाना अत्यंत आवश्यक है। प्रकृति से इसके दोहन को कम करने के लिए तथा वर्ष भर इसकी उपलब्धता को बनाए रखने में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक भी एक अहम भूमिका अदा कर सकती है। *डेल्फिनियम डेनुडेटम* की औषधीय संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए भविष्य में इस पौधे पर और अधिक शोधकार्य करने की आवश्यकता है ताकि इस प्रजाति से ज्यादा से ज्यादा लोग लाभान्वित हो सके।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 36-39 (2023)

पादपालय (हर्बेरियम) : अभिलेख संग्रहालय और पुनरुद्धार व्यवस्था

एम. आनंद लक्ष्मी, आर. मणिकंदन, डबल्यू ऐरिसदासन व सार्थक सक्सेना

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्रीय केंद्र, तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय परिसर, कोयम्बत्तूर

पादपालय (हर्बेरियम, बहुवचन : हर्बेरिया) परिरक्षित किए गए सूखे और संपीडित पादप प्ररूपों/प्रतिरूपों का संग्रह है। वास्तविक पौधों को सही तरीके से अभिनिर्धारित करने के लिए, प्ररूपों/प्रतिरूपों को विभिन्न पादप-भौगोलिक क्षेत्रों और अनुकूल तापमान परिस्थितियों में विशेष प्रकार की अलमारियों में संगृहीत किया जाता है। इन संग्रहों में उच्च संवहनी पौधे जैसे आवृतबीजी, अनावृतबीजी और पर्णांग से लेकर असंवहनी पौधे जैसे शैवाल और हरितोद्भिद (ब्रायोफाइट्स) हो सकते हैं। पादपों का वर्गीकरण एक स्वीकृत प्रणाली के तहत सुव्यवस्थित तरीके से किया जाता है। पादपालय एक भंडार के रूप में कार्य करता है। इंडेक्स हर्बेरियम सार्वजनिक पादपालयों की एक विश्व सूची है। इसे समय-समय पर इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर प्लांट टैक्सोनॉमी प्रकाशित करता है जिसकी अद्यतन स्थिति http://sweetgum.nybg.org/science/ih/वेबसाइट पर देखी जा सकती है। 1 दिसंबर, 2018 तक के इंडेक्स हर्बेरियरम में उपलब्ध डेटा के अनुसार, विश्वभर में लगभग 3095 कार्यकारी पादपालय हैं जिनमें 387,513,053 पादप प्ररूप/प्रतिरूप संगृहीत हैं। विश्व के 178 देशों में कम-से-कम एक अधिकृत पादपालय है। पिछले वर्ष के दौरान, 576,627 पादप प्ररूपों/प्रतिरूपों के साथ 69 नए पादपालय इंडेक्स हर्बेरियम की सूची में जुड़े। वहीं 12 पादपालय इस सूची से बाहर कर दिए गए।

पादपालय वर्गिकीविज्ञों (टैक्सोनामिस्ट) के लिए मूल संदर्भ स्रोत के साथ-साथ शोध, शिक्षण व सार्वजनिक सूचनाओं का एक केंद्र होता है। राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (एनबीए) के अनुसार, वानस्पतिक प्ररूपों/प्रतिरूपों को आधिकारिक तौर पर मान्यता प्राप्त सार्वजनिक पादपालयों में अनिवार्य रूप से जमा किया जाना चाहिए। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विभिन्न जैव-भौगोलिक प्रान्तों में स्थित पादपालयों में इन प्ररूपों/प्रतिरूपों की उचित देखभाल की जाती है जिससे शोधकार्य से जुड़े लोगों के लिए स्थायी रूप से ये सुगमता से उपलब्ध हो पाते हैं। पादपालय के प्ररूपों/प्रतिरूपों को यदि पानी, नमी, कवक और विभिन्न प्रकार के कीटों से बचाव करके अच्छी प्रकार से व्यवस्थित करके रखा जाए, तो वे हमेशा के लिए सुरक्षित रहते हैं। प्रत्येक प्ररूप/प्रतिरूप एक वाउचर के रूप में होता है, जो एक विशेष स्थलाकृतिक स्थान और समय पर प्रजातियों की प्राप्ति का एक स्थायी अभिलेख दर्शाता है। आवश्यक आंकड़ों के बिना प्ररूपों/प्रतिरूपों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

- पादपालयों का उपयोग निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है:
- किसी पौधे का अन्वेषण या उसके अभिनिर्धारण की पुष्टि करना या यह निर्धारित करना कि यह विज्ञान के लिए नया है।
- उन विशेषज्ञों की अवधारणाओं का प्रलेखीकरण करना जिनके तहत अभी तक प्ररूपों/प्रतिरूपों का अध्ययन किया गया है।
- आकृतिक माप, पौधों के चित्रण और स्थानिकता डेटा के लिए सामग्री प्रदान करना।
- पुष्पन और फलन अवधि का प्रलेखीकरण करना और पौधों की तरुणावस्था रूपों का भविष्य की अवस्थाओं के लिए संगृहीत करना।
- नए समूहों और प्ररूपों/प्रतिरूपों को संगृहीत करना।
- शोध सामग्री का ऋण प्राप्त करने के लिए बुनियादी ढांचा प्रदान करना।
- डीएनए विश्लेषण के लिए सामग्री प्रदान करना।
- भूत और भविष्य के वानस्पतिक अभियानों संबंधी जीआईएस अध्ययन के लिए जानकारी प्रदान करना।
- तस्वीरों के लिए हाउस वाउचर प्रदान करना जिनका उपयोग व्याख्यान, वेबसाइटों और प्रकाशनों में किया जा सकता है।

- दुर्लभ या विलुप्त प्रजातियों के बारे में जानकारी प्रदान करना जो अब प्रकृति में मौजूद नहीं हैं और उनके जीवाश्मों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के लिए आधुनिक प्रतिरूप प्रदान करना।
- परागण अध्ययन के साथ-साथ एलर्जी पर अध्ययन के लिए पराग प्रदान करना।
- स्थानिकता की सीमाएं निर्धारित करना, कौन सा पौधा कहां विकसित हुआ है उसका प्रलेखीकरण करना।
- सूक्ष्म, रासायनिक और भौतिक जांच के लिए सामग्री प्रदान करना।
- पत्ती के रूप में पर्ण के भौतिक अध्ययन के लिए जानकारी प्रदान करना क्योंकि यह जलवायु परिवर्तन से संबंधित है।
- बहुगुणित आबादी का प्रलेखीकरण करना जो पत्तियों से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है।
- क्षेत्रीय स्तर पर विलुप्त पौधों सहित पूर्वत: प्राप्त पौधों की प्राप्ति का कालानुक्रमानुसार प्रलेखीकरण करना।
- संवहनी पौधों के प्रमुख समूहों के विकास का प्रलेखीकरण करना।
- शिक्षण सामग्री प्रदान करना (वनस्पति विज्ञान, वर्गिकी, क्षेत्र-पारिस्थितिकी, क्षेत्रीय वनस्पतिजात और पादप समूहों का विवरण, मानवजाति वनस्पति विज्ञान, कृषि, वृक्ष-विज्ञान, वानिकी)।
- पूर्वस्नातक और स्नातक छात्रों के लिए इंटर्नशिप और नौकरी के अवसर प्रदान करना।
- प्रतिरूपों का स्कैनिंग और डेटाबेस विकसित करने आदि के लिए स्थानीय वालंटियरों को प्रशिक्षित करना।
- साधारण जनगण के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम चलाना (जैसे स्थानीय वानस्पतिक कुल)।
- अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के लिए सभी प्रकार के पौधों के भागों के लिए एक अभिनिर्धारण केंद्र के रूप में सेवा प्रदान करना।
- सामान्य जनता के लिए एक शैक्षिक उपकरण के रूप में सेवा प्रदान करना (उद्यान क्लब, स्कूल समूह, आदि)।
- संग्रहालयों और शैक्षिक प्रदर्शन के लिए प्रतिरूप प्रदान करना।
- दीर्घकालिक पहल के केंद्र के रूप में कार्य करना।
- वैश्विक, क्षेत्रीय या स्थानीय अध्ययन के केंद्र के रूप में कार्य करना।
- चित्रकारों और कलाकारों को बच्चों की प्रेरणादायक पुस्तकों की रचना के लिए सटीक चित्र तैयार करने में मदद करना।
- संगृहीत आंकड़ों और छवियों को उनके संग्रह स्थल से अपने देश में लाना (अंतर्राष्ट्रीय संबंध)।
- खेती योग्य पौधों की प्रजातियों के बारे में जानकारी प्रदान करना।

आवश्यक अभिलेखों को पादपालयों में संगृहीत करने के कई तरीके हैं जो अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक और लागत - प्रभावी होते हैं। पादपालय में आने- जाने वाली सामग्रियों के अभिलेख को इंदराज करने के लिए विशिष्ट हेडिंग के तहत एक अलग और साधारण खाता-बही या फार्म का प्रयोग किया जा सकता है या यदि कंप्यूटर का उपयोग किया जाता है, तो कम-से-कम एक या एक से अधिक बैकअप सीट का ध्यान रखना आवश्यक है। प्ररूपों/प्रतिरूपों की खेपों को 4 वर्गों में बांटा जा सकता है (क्षेत्र अभियानों के दौरान एकत्रित, विनिमय / ऋण के रूप में प्राप्त, उपहार और प्ररूप नमूने)। सभी प्ररूपों/प्रतिरूपों की खेप प्राप्त होने के उपरांत उन्हें रिसेप्शन कार्यालय में ले जाया जाना चाहिए। सभी पार्सल, बक्से आदि की प्राप्ति की सूचना तुरंत प्रेषक संस्था या व्यक्ति को दी जानी चाहिए। जब सामग्री की जांच हो गई हो, तो भेजने वाली संस्था के शिपिंग फॉर्म पर हस्ताक्षर करने के पश्चात उनको वापस कर देना चाहिए। पार्सल्स को कीट संक्रमण से बचाना चाहिए, इसके लिए पादपालय की इमारतों में प्रवेश करने से पहले ही उनका धूमन (फ्यूमिगेशन) या डीप फ्रीजिंग करना चाहिए। उधार ली गई सामग्री

को "अग्निरोधक" तथा धूलकण और कीटमुक्त स्थानों में रखा जाना चाहिए।

फील्ड एक्सपेडिशन, एक्सप्लोरेशन और कलेक्शन ट्रिप में एकत्र किए गए संसाधित और माउंट किए गए प्ररूपों/प्रतिरूपों को पादपालय में उनके आने और जाने का अलग से रिकॉर्ड करते हुए वर्गिकी के मान्यता प्राप्त प्रणालियों के तहत व्यवस्थित रूप से संगृहीत किया जाता है। भारतीय पादपालयों में गणों और कुलों की संख्या 'जेनेरा प्लांटेरम'/'द फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया' के आधार पर निर्धारित की जाती है। कुलों को अच्छी तरह से व्यवस्थित करना वांछनीय है, इसलिए खोज और मिलान द्वारा अभिनिर्धारण के लिए यह पद्धति सुविधाजनक है। उपहार और सामग्री के संग्रहण के बीच का अंतर यह है कि उपहारस्वरूप प्रतिरूपों को स्वीकार करने और रखने के लिए पादपालय बाध्य होता है। पादपालय उन्हें लेने से मना नहीं कर सकता है और न ही उन्हें बदलवाने के लिए भेज सकता है। औषधीय वनस्पति की जांच, पारिस्थितिकीय कार्य या कानूनी साक्ष्य आदि संबंधी प्रतिरूप जो प्रकाशित अभिलेख के लिए वाउचर का कार्य करते हैं अक्सर ऐसी स्थितियों के तहत प्राप्त होते हैं। वाउचर नमूने अक्सर बहुत सावधानी से बनाए जाते हैं तथा आमतौर पर इनसे संबंधी विरल जानकारी प्रदान की जाती है।

पादपालयों के बीच वैज्ञानिक सामग्रियों का व्यापक वितरण प्रतिरूपों के आदान-प्रदान के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। आमतौर पर, आदान-प्रदान संस्थाओं के बीच होता है, हालांकि व्यक्तियों के बीच भी कभी-कभी आदान-प्रदान होता है। आदान-प्रदान के लिए भेजी जाने वाली सामग्रियां ऐसी गुणवत्ता वाली होनी चाहिए कि पादपालयों को अपने संग्रह में शामिल करने में किसी प्रकार की तकनीकी समस्या न हो। आदान-प्रदान प्रणाली में शामिल पादपालय कुछ टैक्सा या कुछ क्षेत्रों में पाए जाने वाली वनस्पतियों के प्ररूपों/प्रतिरूपों के लिए अनुरोध कर सकते है। नागोया प्रोटोकॉल कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी, 2010 का एक पूरक समझौता है। यह 29 अक्टूबर 2014 से प्रभावी है। यह आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से होने वाले लाभों का उचित और न्यायसंगत साझाकरण का समझौता है, जिससे जैव विविधता के संरक्षण और स्थायी उपयोग में योगदान होता है। यह आनुवंशिक संसाधनों तक पहुंच, लाभ-बंटवारे और अनुपालन के संबंध में अपने अनुबंधित पक्षों के लिए दायित्व निर्धारित करता है। प्ररूपों/प्रतिरूपों को आमतौर पर उपहार के रूप में तीन कारणों से भेजे जाते हैं: (i) परमिट या अन्य समझौतों के अनुसार, (ii) एक क्यूरेटर की स्वेच्छा से जहां सामग्री के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं है या (iii) "अभिनिर्धारण के लिए आदान-प्रदान"। जब शोधकर्ता अपने देश से बाहर जाकर संग्रह करता है, तो जिन संग्रहों के लिए परमिट दिए जाते हैं, उनके लिए आमतौर पर यह अनिवार्य होता है कि संगृहीत सामग्रियों का एक प्ररूप/प्रतिरूप उस देश के पादपालय में जमा किया जाए। उपहार देने वाले संस्थाओं को वर्णन की निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन करना होता है। वनस्पतिविज्ञों द्वारा किए गए अन्वेषणों के प्ररूप/प्रतिरूप अक्सर पादपालय संबद्धता की जांच के बिना उपहार के रूप में प्राप्त होते हैं। वनस्पतिविज्ञों को जड़ी-बूटियों के प्ररूपों/प्रतिरूपों को पादपालयों में संगृहीत कराने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जहां इनको सुव्यवस्थित तरीके से परिरक्षित किया जा सकता है। कई ऐसे संग्रह शोधकर्ताओं के निधन के पश्चात पादपालयों में जमा नहीं हो पाते हैं। ऐसे संग्रहों को उनके परिवार के सदस्य या उत्तराधिकारी उपहार के रूप में पादपालयों में दे सकते हैं।

शैवाल, कवक और पौधों के नामकरण के अंतर्राष्ट्रीय कोड के अनुसार, एक नाम स्थायी रूप से एक प्रकार के प्ररूप/प्रतिरूप (या कभी-कभी एक चित्रण) के माध्यम से एक टैक्सोन से जुड़ा होता है। संस्था द्वारा दी गई परिग्रहण संख्या को उल्लिखित किया जाना चाहिए। कुछ शर्तों के साथ प्ररूपों/प्रतिरूपों को शोधकर्ताओं को उधार दिया जा सकता है। कुछ पादपालयों में ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण प्रतिरूपों को उधार में देने का नियम नहीं है। ऐसे मामलों में, इन प्रतिरूपों की तस्वीरें लेना सुविधाजनक होता है। आमतौर पर ऋणों का आदान-प्रदान संस्थाओं के बीच होते हैं न कि व्यक्तियों (निदेशक या क्यूरेटर से जुड़े) के बीच। संदर्भ के लिए प्रतिरूपों को ऋण के रूप में लेने का अनुरोध करने से पूर्व प्रारंभिक कार्यों को पूरा किया जाना चाहिए ताकि लंबे समय तक ऋण से बचा जा सके (ऋण अवधि आम तौर पर छह महीने के लिए होती है)। ऋण सामग्री को संभालना एक तकनीशियन के कर्तव्यों का एक महत्वपूर्ण पहलू है और संस्था की प्रतिष्ठा इसके ऋण प्रबंधन की दक्षता पर निर्भर करती है। फिर से प्रतिरूपों की खेप को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है : उपहार, आदान-प्रदान व ऋण। भेजे गए प्रतिरूपों की संख्या, प्राप्तकर्ता संस्था का नाम और भेजने की तारीख को इंदराज करना महत्वपूर्ण है। ऋण के विवरण के साथ पादपालय में एक लेबल लगा होना चाहिए ताकि यह इंगित हो सके कि कौन से प्रतिरूप पादपालय से ऋण के रूप में दिए जाने के बाद हटा दिए गए हैं। संस्थाओं को लौटाए जाने वाले ऋण की सूची को मूल रूप से भेजे गए प्रतिरूपों की सूची से मिलाकर जांचनी चाहिए। ऋण के रूप में चिह्नित किए जाने पर जोड़े गए सभी पेंसिल एनोटेशन को मिटा दिया जाना चाहिए। उधार देने वाले संस्था को सूचित किया जाना चाहिए कि उधार लिए गए सभी प्रतिरूप वापस किए जा रहे हैं या कुछ हिस्से। यह भी इंगित किया जाना चाहिए कि आगे के अध्ययन के लिए क्या रखा जा रहा है।

माउंटेड और अनमाउंटेड दोनों प्रकार के सूखे वाउचर नमूनों को आसानी से पादपालय के नियमों और अधिनियमों के साथ मेल किया जाता है। भेजी जाने वाली नमूनों की खेप तैयार करते समय अच्छी तरह देखभाल की जानी चाहिए। कार्डबोर्ड को मजबूत करने और पोस्ट करने से पहले सूखे नमूनों को अखबार की सिलवटों में टेप के साथ सुरक्षित किया जाता है। मजबूत बनाने के लिए अतिरिक्त कार्डबोर्ड का उपयोग किया जाना चाहिए। माउंटेड नमूनों को कागज (दोहरी तह वाला या अखबार) के तह के अंदर रखकर संरक्षित किया जाना चाहिए और ब्लॉक में एक साथ सुरक्षित रूप से रखा जाना चाहिए। इसे मजबूत लेकिन हल्के बोर्डों के बीच बांधकर या कागज और सीलिंग में लपेटकर सुरक्षित किया जा सकता है। बंडल या फोमिंग या फोमिंग जैसे पैकिंग का उपयोग बंडलिंग से पहले भारी या मोटे नमूनों की सहायता और सुरक्षा के लिए किया जाना चाहिए। लंबे समय तक कमरे के तापमान पर जिप-लॉक या अन्य प्लास्टिक बैग में नमूनों को न छोड़े जाएं। यदि संभव हो तो डाक या शिपमेंट की रसीदें प्राप्त की जानी चाहिए। टाइप सामग्री को पंजीकृत या बीमाकृत होना चाहिए। यदि वाउचर नमूनों को उचित रूप से तैयार करके आदर्श परिस्थितियों में संगृहीत किया गया हो, तो उन्हें पादपालय में हमेशा के लिए परिरक्षित किया जा सकता है। प्ररूप नमूने, जो विशेष रूप से वर्गिकी शोध के लिए मूल्यवान हैं (मैकनील एट अल, 2006) या बहुत पुराने या दुर्लभ नमूने हैं, अनावश्यक हैंडलिंग को कम करने के लिए उनकी अक्सर तस्वीरें खींची जाती है, जिससे नुकसान का खतरा कम होता है। प्ररूप नमूने अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और यथासंभव इन्हें अत्यंत सावधानी के साथ संभाला जाना चाहिए। उन्हें वनस्पतिविज्ञों की भावी पीढ़ियों के लिए विशेषकर अवधारणाओं को परिभाषित करने में एक विशेष रूप से संरक्षित अवस्था में बचाकर रखना होगा।

वर्चुअल पादपालय एक डिजिटाइज्ड रूप का पादपालय है अर्थात यह संरक्षित पौधों या पौधों के हिस्सों की डिजिटल छवियों को संगृहीत करता है। वर्चुअल पादपालय अक्सर उपयोगकर्ताओं के एक बड़े समूह के लिए नमूनों की उपलब्धता को सुगम बनाने के लिए स्थापित किए जाते हैं। यह सार्वजनिक वेब इंटरफ़ेस, पादपालय के संग्रह का एक इलेक्ट्रॉनिक प्रवेश द्वार है। नमूनों की उपयोगिता को लंबे समय तक बढ़ाने के लिए वर्चुअल पादपालय को स्थापित किया जाता है। प्रमुख पादपालय अंतर्राष्ट्रीय ऋण कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, जहां एक शोधकर्ता अध्ययन के लिए नमूनों को भेजने का अनुरोध कर सकता है। इस प्रकार की शिपिंग से नमूनों को क्षति पहंचती है। नमूनों के लेवल डाटा को कैप्चर करने तथा अन्य जानकारी के अलावा कई नमूनों की डिजिटल छवियां कैप्चर की जाती है। उच्च गुणवत्ता वाली छवियों को संगृहीत करना भी वास्तविक नमूनों के प्रत्यक्ष हैंडलिंग और ऋण की मांग को कम करके, संग्रह के दीर्घकालिक संरक्षण में सहायता करने की क्षमता रखता है। पादपालय नमूनों का डिजिटलीकरण हाल ही में बढ़ा है। यदि डिजिटल छवियां उपलब्ध हैं, तो नमूनों की छवियों को इलेक्ट्रॉनिक रूप से भेजा जा सकता है। ये छवियां खुद नमूनों के लिए पर्याप्त विकल्प हो सकते हैं या वैकल्पिक रूप से। शोधकर्ता नमूनों का "पूर्वावलोकन" करने के लिए छवियों का उपयोग कर सकते हैं, जिन्हें आगे के अध्ययन के लिए बाहर भेजा जाना चाहिए। इस प्रक्रिया से शिपिंग के खर्च की बचत होती है और इससे नमूनों के क्षतिग्रस्त होने की संभावना के साथ-साथ शिपिंग की प्रतीक्षा में लगने वाला समय भी कम हो जाता है। वर्चुअल पादपालयों का उपयोग लोक जागरूकता बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है। कुछ पादपालय अपने नमूना डेटाबेस को सार्वजनिक रूप से इंटरनेट पर उपलब्ध कराते हैं। नमूनों की डिजिटल छवियों को इन डेटाबेस में जोड़ा जा सकता है ताकि लोगों को और अधिक सामग्री के साथ जुड़ने की अनुमति मिल सके। कुछ पादपालय विशेष रूप से आकर्षक नमूनों की विशेषता वाले प्रिंट और ग्रीटिंग कार्ड बेचकर तथा उनकी छवियों से भुगतान प्राप्त करते हैं।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 40-42 (2023)

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा का "प्रकृति पथ (नेचर ट्रेल)" : एक संक्षिप्त परिचय

विजय कुमार मासतकर, देवेन्द्र सिंह, एस.पी. पांडा, जे. स्वामी, प्रदीप कुमार कामिला, राहुलदेब बर्मन, रवि प्रसाद, बिष्णुचरण दे, तितिर साहा, आर. सरवानन, मनोज ई. हेम्ब्रम, ज़ीशान मज़हर, कंकन चक्रवर्ती व सत्यम दासगुप्ता

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा दक्षिण-पूर्व एशिया के सबसे पुराने, सबसे बड़े और सबसे मनोरन वनस्पति उद्यानों में से एक है। इसे पहले "कंपनी बागान", "रॉयल बॉटैनिकल गार्डन (आरबीजी)" और भारतीय वनस्पति उद्यान के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में इसे आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान (आचार्य जगदीश चंद्र बोस इंडियन बॉटेनिक गार्डेन) के नाम से जाना जाता है। इस उद्यान को कर्नल रॉबर्ट किड ने वर्ष 1787 में स्थापित किया था। यह उद्यान गंगा (हुगली)

प्रकृति पथ की कुटिया

नदी, शिबपुर, हावड़ा के तट पर स्थित है। यह उद्यान 110 हेक्टेयर (273 एकड़) में फैला हुआ है। इसमें एक-दूसरे से जुड़ी हुई 26 झीलें हैं और नियमित रूप से पानी के स्तर को बनाए रखने के लिए ये झीलें हुगली नदी के साथ जलद्वार (स्लुइस) के माध्यम से जुड़ी हुई हैं। उद्यान के 25 प्रभागों में स्थानिक, संकटग्रस्त, औषधीय, आर्थिक रूप से उपयोगी, सजावटी पौधों आदि सहित विभिन्न प्रकार की लगभग 3000 से अधिक प्रजातियों का एक समृद्ध भंडार है। यह उद्यान स्थानिक और संकटापन्न- संकटग्रस्त पौधों के लिए बहिर्स्थानिक संरक्षण केंद्र के रूप में कार्य करता है।

वर्तमान शहरी जीवन के भागदौड़ में हमें किसी पुराने या घने जंगल के रूप में प्रकृति की नैसर्गिक सुंदरता का अनुभव करने का समय शायद ही मिलता है। हमारे बीच की अति व्यस्तता हमें अपने कार्यस्थल से इतर कहीं अन्यत्र जाने का अवसर प्रदान नहीं करती। ऐसे में हमें आवश्यकता होती है कि हम किसी रमणीय और प्रकृति से परिपूर्ण परिवेश के संसर्ग में जाएं जो हमें क्षण भर में सभी चिंताओ से मुक्त कर मन को तरोताज़ा कर दे। हम आज ऐसे ऐसे परिवेश में जी रहे हैं जब हमारी नई पीढ़ी प्रकृति मूल्यों को भूलती जा रही है जो हमारे पृथ्वी ग्रह की अमूल्य सम्पदा हैं। प्रकृति सदैव मानव जाति के लिए ज्ञान, शांति, कल्याण और समृद्धि का स्रोत रही है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के उल्लेखों से ज्ञान, आत्मज्ञान और शांति प्राप्ति में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में पता चलता है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि आत्मज्ञान और आत्म-साक्षात्कार प्राप्ति के लिए जंगलों के बीचोबीच जाकर ध्यान साधना करते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी अपने-अपने घरों से दूर प्रकृति के परिवेश में गुरुकुल में ही अपने गुरुओं/शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करते थे। अति तनावपूर्ण कार्यशैली, व्यस्तता और तनावपूर्ण जीवनशैली में प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक स्थानों में अपने मन की शांति खोज रहा है। शहरी कार्यक्षेत्र, व्यस्तता और तनावपूर्ण जीवनशैली के वर्तमान परिदृश्य में, सभी मनुष्य प्रकृति की शीतलता और ताजगी के संपर्क में आने का प्रयास कर रहे हैं।

आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा ने अपने अनछुए प्रकृतवासों में से एक को "प्रकृति पथ" के रूप में विकसित किया है। वर्तमान में उद्यान में 15 एकड़ क्षेत्र में लगभग 2 किलोमीटर का पथ बनाया गया है जिसका भविष्य में विस्तार किया जाएगा। झील क्षेत्र के पास लकड़ियों और घास-फूस से कुटिया का निर्माण किया गया है, जो "प्रकृति पथ" के आकर्षण है का मुख्य केंद्र है। इस स्थल पर निश्चल वातावरण और आध्यात्मिक शांति दोनों के कलरव को साथ-साथ महसूस किया जा सकता है। यहां पक्षियों की कभी न ख़त्म होने वाली चहचहाहट, कीट-पतंगों की भिनभिनाहट और पत्तियों की सरसराहट नैसर्गिक जंगल का माहौल बनाती है। "प्रकृति पथ" प्रकृतवास में पुष्पीय और अपुष्पीय पौधों की प्रजातियों का भंडार है, जिनमें कई स्थानिक और संकटग्रस्त पौधे शामिल हैं। ट्विन सिटी हावड़ा के केंद्र में आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान का नव विकसित "प्रकृति पथ" सिटी ऑफ जॉय (कोलकाता/हावड़ा) के लिए फेफड़ा के रूप में भी काम करेगा और भ्रमणार्थी जलाशयों, हरियाली, पक्षियों की चहचहाहट और तितलियों की फड़फड़ाहट के बीच से गुजरते हुए रंग-बिरंगे फूलों की खुशबू से भरी हवा के साथ सुखद वातावरण का अनुभव कर सकते हैं। उद्यान के इस भाग में प्रवेश करने वाले भ्रमणार्थियों को वर्षावन का अनुभव प्राप्त होगा। पथों का निर्माण कई घुमावदार मोड़ों के साथ किया गया है ताकि भ्रमणार्थियों को प्रकृति की गोद में अधिकतम दूरी तय करने तथा स्वस्थानिक और बहिर्स्थानिक रूप से संरक्षित वनस्पतियों को आसानी से देखने की सुविधा मिल सके। इस मार्ग क्षेत्र में 89 कुलों से संबंधित पुष्पीय और अपुष्पीय पौधों की लगभग 315 प्रजातियों का भंडार है, जिनमें कई स्थानिक, संकटग्रस्त और संकटापन्न प्रजातियां भी शामिल हैं। बड़े पौधों की छत्रछाया, अधिकतम अबाधित क्षेत्र, स्थानीय जीवों के आवास आदि के कारण लंबे समय से उद्यान के इस भाग में प्राकृतिक रूप से एक पारिस्थितिकी तंत्र विकसित हो रहा है। अलग-अलग भूमि क्षेत्रों को जोड़ने के लिए "प्रकृति पथ" में जल निकायों पर बांस के कलात्मक पुलों का निर्माण किया गया है। कुछ कलात्मक प्रवेश द्वार भी संकरी पगडंडियों को सुशोभित कर रहे हैं, जो विभिन्न लटकती लताओं से आच्छादित हैं।

***"प्रकृति पथ"* के मुख्य आकर्षण**

- विभिन्न प्रकार के पथों के नामकरण भारतीय पौराणिक नामों के आधार पर किए गए हैं। इनमें चित्रकूट, दण्ड कारण्य, पंचवटी, काम्यकवन और मधुबन आदि प्रमुख हैं।
- पौधों के वानस्पतिक नाम उनके कुलों, प्रजातियों और अन्वेषणकर्ताओं के नाम के विवरण साथ दिए गए हैं।
- यहां पर सैकड़ों स्थानिक और संकटग्रस्त पादप प्रजातियों का अवलोकन किया जा सकता है।
- विभिन्न जल निकायों में दुर्लभ प्रजातियों के जलीय पौधे हैं।

- प्रकृति पथ 2 किलोमीटर की दूरी में टेढ़ा-मेढ़ा पथ है।
- महानगर में वन की अनुभूति कराता है।
- लकड़ियों और बांसों से बने हुए पुल पूर्वोत्तर भारत के प्राकृतिक पुलों की अनुभूति कराते हैं।
- वर्षाजल संचयन के लिए अल्पकालिक तालाब।
- समृद्ध और अद्वितीय जैव विविधता।
- प्रकृति विद्यालय शिक्षण मॉडल।
- आर्द्रभूमियों का पारिस्थितिकी पुनर्स्थापन।
- सुंदर पक्षियों को देखते हुए उनकी मधुर आवाज़ों को सुना जा सकता है।
- प्राकृतिक छज्जा (झरोखा)

"प्रकृति पथ" का परिप्रेक्ष्य

विश्व के वर्तमान परिदृश्य की बात की जाए, तो विश्वभर में प्रदूषण और वैश्विक गर्मी (ग्लोबल वार्मिंग) हमारी कल्पना से परे बढ़ गई है। पश्चिम बंगाल की राजधानी कोलकाता कोई अपवाद नहीं है क्योंकि वाहनों, उद्योगों, घरों आदि से प्रदूषकों के उत्सर्जन से शहर की हवा और पानी की गुणवत्ता लगातार खराब हो रही है। अब उद्यान का "प्रकृति पथ" निस्संदेह आसपास के इलाकों के लिए कार्बन सिंक का कार्य करेगा। ताजगी, मानसिक शांति और शिक्षा प्रदान करने के अलावा, "प्रकृति पथ" खामोशी से पर्यावरण की सेवा करता रहेगा और आने वाले दिनों में इससे स्थानीय वनस्पतियों और जीवों को अत्यधिक लाभ होगा। 'प्रकृति पथ' में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वनों और जीवों के बीच के उस अभिन्न कड़ी का ज्ञान होगा जिसे हमने हमेशा हमारी संस्कृति से श्लोकों और कहानी-किस्सों के माध्यम से सीखने का प्रयास किया है। "प्रकृति पथ" अपनी सुंदरता के अलावा राष्ट्र और मानवता की सेवा के साथ-साथ भ्रमणार्थियों के लिए पर्यावरण जागरूकता और शिक्षा के साथ-साथ हजारों की संख्या में सुबह की सैर करने वालों, विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के लिए अच्छे स्वास्थ्य के उद्देश्य को पूरा करेगा। उद्यान में इस "प्रकृति पथ" की अवधारणा और परिकल्पना का श्रेय भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वर्तमान निदेशक डॉ. ए.ए. माओ को जाता है जिनके मार्गदर्शन में इस अनूठे आकर्षण को कार्यान्वयित किया गया है। भारतीय स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूर्ण होने पर आज़ादी के अमृत महोत्सव में "प्रकृति पथ" को औपचारिक तौर पर 10 अगस्त, 2023 से साधारण जनता के लिए खोल दिया गया है। "प्रकृति पथ" भविष्य के निर्माण में वर्तमान का एक छोटा सा योगदान है, जो आने वाली पीढ़ी को वनरोपण, वृक्षारोपण, पर्यावरण संरक्षण और जैव विविधता की महता को संजोकर रखने के लिए उत्साहित करता रहेगा।

दश कूप समा वापी, दशवापि सयो सर:।
दशह्रद सम: पुत्रों, दशपुत्र समो द्रुम: ।।

दस कुंओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब होता है।
दस तालाबों के बराबर एक पुत्र, और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है I। – **मत्स्य पुराण**

"तितली महीनों को नहीं बल्कि क्षणों को गिनती है; और उसके पास पर्याप्त समय है।" – **रवीन्द्रनाथ टैगोर**
"पृथ्वी हर आदमी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करती है,

लेकिन हर आदमी के लालच को नहीं।" – **महात्मा गांधी**

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 43-45 (2023)

स्वच्छ भारत मिशन

पेयजल एवं स्वच्छता विभाग, जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार

सार्वभौमिक स्वच्छता प्राप्त करने के लिए किए जा रहे प्रयासों में तेजी लाने के लिए और स्वच्छता पर ध्यान केंद्रित करने हेतु भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र दामोदरदास मोदी ने 2 अक्टूबर 2014 को स्वच्छ भारत मिशन का आरंभ किया था। वर्ष 2014 से 2019 के दौरान इस मिशन को राष्ट्रव्यापी अभियान / जनांदोलन के रूप में लागू किया गया जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में खुले में शौच करने की प्रथा को खत्म करना था। इसके लिए बड़े पैमाने पर व्यवहार परिवर्तन का प्रयास किया गया, घरेलू और सामुदायिक स्वामित्व वाले शौचालयों का निर्माण किया गया और शौचालय निर्माण तथा इसके उपयोग की निगरानी के लिए तंत्र स्थापित किया गया। मिशन के तहत, भारत में सभी गांवों, ग्राम पंचायतों, जिलों, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने ग्रामीण भारत में 100 मिलियन से अधिक शौचालयों का निर्माण करके 2 अक्टूबर 2019, महात्मा गांधी की 150 वीं जयंती तक स्वयं को "खुले में शौच से मुक्त" (ओडीएफ) घोषित किया। यह सुनिश्चित करने के लिए कि खुले में शौच न करने की प्रथा स्थायी रहे, कोई भी वंचित न रह जाए और ठोस एवं तरल कचरा प्रबंधन की सुविधाएं सुलभ हों, मिशन अब अगले चरण II अर्थात् ओडीएफ-प्लस की ओर अग्रसर है। स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के दूसरे चरण के तहत ओडीएफ प्लस गतिविधियां ओडीएफ व्यवहार को सुदृढ़ करेंगी और गांवों में ठोस एवं तरल कचरे के सुरक्षित प्रबंधन के लिए मध्यवर्तन करने पर ध्यान केंद्रित करेंगी।

स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के चरण I का उद्देश्य 2 अक्टूबर 2019 तक स्वच्छ और खुले में शौच मुक्त (ओडीएफ) भारत की प्राप्ति करना था। स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) का चरण II अर्थात् ओडीएफ-प्लस इस मिशन के चरण I का उत्तराधिकारी है और ठोस एवं तरल कचरा प्रबंधन के माध्यम से स्वच्छ गांवों की प्राप्ति करने के साथ-साथ पहले चरण में प्राप्त उपलब्धियों को स्थायी बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित

सार्वभौमिक स्वच्छ भारत मिशन की एक झलक

करने के लिए चरण – II की परिकल्पना की गई है।

स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के चरण II का उद्देश्य परस्पर दृढ़ता स्थापित करना है और इसमें निम्नलिखित शामिल हैं :

- लम्बी अवधि तक गांवों, ग्राम पंचायतों, ब्लॉक, जिलों और राज्यों की खुले में शौच मुक्त स्थिति को बनाए रखना।
- यह सुनिश्चित करना कि लोग शौचालयों का नियमित रूप से उपयोग करते रहें और व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्वच्छता व्यवहार सहित सुरक्षित स्वच्छता का पालन करते रहें।
- यह सुनिश्चित करना कि ग्रामीण क्षेत्रों में समग्र स्वच्छता के लिए गांवों में ठोस एवं तरल कचरा प्रबंधन की व्यवस्था उपलब्ध हो।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की सामान्य गुणवत्ता में सुधार लाना।

स्वच्छ भारत मिशन में कार्यनीति पर बल दिया गया है। कार्यनीति पर बल देने का तात्पर्य राज्य सरकारों को स्वच्छ भारत के कार्यान्वयन में लचीलापन प्रदान करना है। चूँकि स्वच्छता राज्य का विषय है, इसलिए राज्य की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्वच्छ भारत मिशन की कार्यान्वयन नीति तथा तंत्रों और निधियों के उपयोग पर निर्णय लेना आवश्यक है। इसमें देश के लिए इसकी आवश्यकताओं को समझते हुए मिशन को पूरा करने के लिए संकेन्द्रित कार्यक्रम के जरिए राज्य सरकारों के प्रयासों को पूरा करने में भारत सरकार की अहम भूमिका है।

कार्यनीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं

- जमीनी स्तर पर गहन व्यवहारगत परिवर्तन गतिविधियां चलाने के लिए जिलों की संस्थागत क्षमता को बढ़ाना।
- कार्यक्रम को समयबद्ध तरीके से चलाने और परिणामों को सामूहिक रूप से मापने के लिए कार्यान्वयन एजेंसियों की क्षमताओं को सुदृढ़ करना।
- समुदायों में व्यवहारगत परिवर्तन गतिविधियों के कार्यान्वयन हेतु राज्य स्तर की संस्थाओं के कार्यनिष्पादन को प्रोत्साहन देना।

स्वच्छ भारत मिशन को मुख्य रूप से भिन्न करने वाला कारक व्यवहारगत परिवर्तन है और इसलिए व्यवहारगत परिवर्तन संवाद (बीसीसी) पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। बीसीसी, एसबीएम (जी) के घटक के रूप में की जाने वाली एक 'स्टैण्डअलोन' पृथक

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की इकाइयों में राष्ट्रीय स्वच्छता मिशन के तहत की गई गतिविधियों की झलकियां

गतिविधि नहीं है बल्कि प्रभावी बीसीसी के माध्यम से समुदायों को सुरक्षित और स्थायी स्वच्छता प्रथाओं को अपनाने के लिए परोक्ष रूप से दबाव डालने के विषय में है। जागरूकता सृजन, लोगों की मानसिकता को प्रेरित कर समुदाय में व्यवहारगत परिवर्तन लाने और घरों, स्कूलों, आंगनवाड़ियों, सामुदायिक समूहों के स्थलों में स्वच्छता की सुविधाओं की मांग सृजित करने तथा और ठोस एवं तरल अपशिष्ट पदार्थ प्रबंधन गतिविधियों पर बल दिया जा रहा है। चूँकि सभी परिवारों और व्यक्तियों द्वारा प्रतिदिन एवं प्रत्येक बार शौचालय के उपयोग पर वांछित व्यवहार अपनाए बिना खुले में शौच मुक्त गांवों की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। अत: सामुदायिक कार्रवाई और आउटलाइअरों पर दबाव पैदा करना जरूरी है। वैयक्तिक पारिवारिक शौचालय के प्रोत्साहन के उपयोग के संबंध में राज्यों को छूट प्राप्त है। गहन प्रेरणादायी और व्यवहारगत परिवर्तन कार्य-कलापों (आईईसी घटक में से) के अलावा, ग्रामीण परिवारों के लिए वैयक्तिक पारिवारिक शौचालयों हेतु प्रोत्साहनों का प्रावधान राज्यों (आईएचएचएल घटक से) के पास उपलब्ध है। इसे, कवरेज को और अधिक बढ़ाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता था ताकि समुदायिक परिणामों को प्राप्त किया जा सके।

स्वच्छ भारत मिशन को जमीनी स्तर पर कार्यान्वयित करने के लिए ग्राम पंचायत स्तर पर समर्पित, प्रशिक्षित और उचित रूप से प्रोत्साहन प्राप्त स्वच्छता कार्य बल की आवश्यकता है। 'जमीनी सैनिकों'अथवा 'स्वच्छाग्राहियों' जिन्हें पहले 'स्वच्छता दूत' कहा जाता था, की एक सेना तैयार की गई है और उन्हें वर्तमान व्यवस्थाओं जैसे पंचायती राज संस्थाओं, कॉपरेटिव्स, आशा, आंगनवाड़ी कार्यकताओं, महिला समूहों, समुदाय आधारित संगठनों, स्वयं सहायता समूहों, वॉटर लाइनमैन/पंप ऑपरेटरों आदि के माध्यम से नियोजित किया गया है जो पहले से ग्राम पंचायतों में कार्य कर रहे थे अथवा विशेष रूप से इस प्रयोजनार्थ स्वच्छाग्राहियों के रूप में नियोजित किए गए थे। यदि संबद्ध विभागों में वर्तमान कार्मिकों का उपयोग किया जाता है तो उनके मूल संबद्ध विभाग, स्वच्छ भारत मिशन के तहत गतिविधियों को शामिल करने के लिए इनकी भूमिकाओं के विस्तार की स्पष्ट व्यवस्था करें।

परिवार और समुदाय दोनों स्तरों पर स्वामित्व और स्थायी उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए शौचालयों की संस्थापना में वित्तीय अथवा अन्य रूप से लाभार्थी/समुदायों की पर्याप्त भागीदारी की सलाह दी गई है। बहुत से विकल्पों की सूची में निर्माण संबंधी दी गई छूट यह है कि गरीबों और लाभ न प्राप्त करने वाले परिवारों को उनकी आवश्यकताओं और वित्तीय स्थिति पर निर्भर करते हुए उन्हें अपने शौचालयों की स्थिति को निरन्तर रूप से बेहतर बनाने के लिए अवसर दिए जाएं और यह सुनिश्चित किया जाए कि स्वच्छ शौचालयों का निर्माण किया जाए जिसमें सुरक्षित कंफाइनमेंट मल का सुरक्षित निपटान सुनिश्चित हो। उपयोगकर्त्ता की पसन्द और स्थान-विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रौद्योगिकी विकल्पों तथा उन पर लगने वाली लागत की विस्तृत सूची उपलब्ध कराई गई है। जैसे-जैसे नई प्रौद्योगिकियां सामने आती हैं इस सूची को निरन्तर अद्यतन किया जाता है और प्रौद्योगिकियों से जुड़े विकल्प उपलब्ध कराते हुए लाभार्थियों को सूचित किया जाता है।

गांवों की खुले में शौच मुक्त स्थिति, ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन परियोजनाओं का कार्यान्वयन तथा पारिवारिक शौचालयों, स्कूल और आंगनवाड़ी शौचालयों और समुदाय स्वच्छता परिसरों के निर्माण और उपयोग की निगरानी करने के लिए एक सुदृढ़ निगरानी व्यवस्था की गई है। इस निगरानी पद्धति में सामाजिक ऑडिट जैसी एक सुदृढ़ समुदाय चालित प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है। समुदाय आधारित मॉनीटरिंग और सतर्कता समितियाँ, लोगों में दबाव पैदा करने में सहायक होती हैं। राज्य, समुदाय की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनाए जाने वाले डिलीवरी पद्धति के बारे में निर्णय लेते हैं।

'ओडीएफ' को भारत सरकार द्वारा परिभाषित किया गया है और इसके लिए संकेतक बनाए गए हैं। इन संकेतकों के अनुरूप गांवों का सत्यापन करने के लिए विश्वसनीय प्रक्रिया लाने के लिए एक प्रभावशाली सत्यापन पद्धति बहुत आवश्यक है। चूंकि स्वच्छता राज्य का विषय है और राज्य ही कार्यक्रम के कार्यान्वयन में मुख्य निकाय हैं, अतः ओडीएफ सत्यापन के लिए राज्य स्वयं एक बेहतर पद्धति तैयार कर सकते हैं। केन्द्र की भूमिका, विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं को आपस में साझा करना है और राज्यों द्वारा ओडीएफ घोषित ग्राम पंचायतों/गांवों के एक छोटे प्रतिशत का मूल्यांकन करने के लिए पद्धति विकसित करना है और फिर आगे केन्द्र/राज्य के अवमूल्यन में भारी अंतर होने पर राज्यों को सहायता देना और मार्गदर्शन करना है।

"स्वच्छता ही सेवा है"

स्रोत : पेयजल एवं स्वच्छता विभाग, जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 46-48 (2023)

समसामयिकी

हिन्दी अनुभाग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

विश्व स्तर पर सुंदरबन पर जलवायु प्रभाव को उजागर करने के लिए भारत-बांग्लादेश एकजुट हुए

बांग्लादेश और भारत के अधिकारियों और विशेषज्ञों ने कोलकाता में सहमति व्यक्त की कि वैश्विक मंचों पर सुंदरबन में जलवायु से जुड़े नुकसान और क्षति को उठाने के लिए एक संयुक्त हितधारक पहल की आवश्यकता है।

डोडा जिले में दुनिया के सबसे पुराने देवदार का पेड़ मिलने का दावा

जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह वन प्रभाग के अधिकारियों ने डोडा के भालेसा क्षेत्र में दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे पुराना देवदार का पेड़ खोजने का दावा किया है। अपने विशाल आकार के कारण अलग दिखने वाला यह पेड़ धार्मिक महत्व भी रखता है। देवदार के तने का आकार 54 फीट व्यास और स्तन का आकार 35 फीट है, जो दुनिया में इस प्रजाति (*सीड्रस देओदार*) में सबसे बड़ा है।

लंबे समय से लुप्त आयुर्वेदिक पौधा अरुणाचल प्रदेश में फिर से खोजा गया

लंबे समय से लुप्त हो चुके *स्माइलेक्स टर्बन्स* (चोपचिनी) की जंगली प्रजाति का वर्णन फिर से अरुणाचल प्रदेश के प्राचीन जंगलों में किए गए अन्वेषण के आधार पर किया गया है। इसमें सूजन-रोधी और प्रतिरोधक गुण होते हैं। अरुणाचल प्रदेश की स्थानिक प्रजाति *स्माइलेक्स टर्बन्स* का इससे पहले अंतिम बार वर्णन 95 वर्ष पूर्व सन् 1928 में एफ. किंगडन-वार्ड द्वारा किए गए संग्रह के आधार पर किया गया था।

तेलंगाना में नीम के पेड़ों में पाई गई डाइबैक रोग

स्माइलेक्स टर्बन्स (चोपचिनी)

डाइबैक रोग से ग्रसित नीम के पेड़

डाइबैक रोग (शीर्षरंभी क्षय रोग) सभी उम्र के नीम के पेड़ों की पत्तियों, टहनियों और फूलों को प्रभावित करता है। यह गंभीर रूप से संक्रमित पेड़ों में फलों के उत्पादन में लगभग 100% की कमी का कारण बनता है। डाइबैक रोग मुख्य रूप से कवक *फ़ोमोप्सिस अज़ादिराचटे* के कारण होता है। इसके लक्षण बरसात के मौसम की शुरुआत के साथ शुरू होते हैं और बारिश के मौसम के बाद और शुरुआती सर्दियों में गंभीर हो जाते हैं।

अंटार्कटिका की 'एम्परर पेंगुइन' 2100 तक विलुप्त हो सकती हैं

अपने प्रजनन के लिए बर्फ पर निर्भर 'एम्परर पेंगुइन' अंटार्कटिका की प्रजातियों में सबसे पहले विलुप्त हो सकती है। ऐसा होने का कारण ग्लोबल वार्मिंग और अंटार्कटिका की बर्फ का पिघलना है। 'एम्परर पेंगुइन' (एप्टेनोडाईट्स फ़ोर्सटेरी) सभी जीवित पेंगुइन प्रजातियों में सबसे लंबी और सबसे भारी है और केवल अंटार्कटिका में पाई जाती है।

जल के नीचे के भागों का पता लगाने के लिए TRIPLE-nanoAUV 2 परियोजना शुरू की गई

TRIPLE-nanoAUV 2 परियोजना का लक्ष्य उपयुक्त वैज्ञानिक सेंसर के साथ मोटी बर्फ की परत को भेदने और उनके नीचे के जल के क्षेत्रों की खोज करने और पारिस्थितिकी तंत्र को दूषित किए बिना नमूने प्राप्त करने में सक्षम उच्च-प्रौद्योगिकी उपकरण विकसित करना है। TRIPLE का मतलब "टेक्नोलॉजीज फॉर रैपिड आइस पेनेट्रेशन और सबग्लेशियल लेक एक्सप्लोरेशन" है।

वेस्टर्न ट्रैगोपैन

वेस्टर्न ट्रैगोपैन, एक दुर्लभ पक्षी जो कभी विलुप्त होने के कगार पर था, अब हिमाचल प्रदेश में अपने अस्तित्व के लिए आशा की किरण देख रहा है। यह पक्षी तीतर परिवार का है। इसे हिमाचल प्रदेश का राज्य पक्षी नामित किया गया है। पश्चिमी ट्रैगोपैन की दुनिया की सबसे बड़ी ज्ञात आबादी ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क के ऊपरी हिस्से में पाई जाती है।

इजरायली समुद्र तट पर पहली बार लुप्तप्राय सील देखी गई

एक दुर्लभ सील, मेडिटेरेनियन मोंक सील को इजरायली समुद्र तट पर देखा गया, पहली बार लुप्तप्राय स्तनधारी ने इजरायल की भूमि पर निवास

प्रतीकात्मक तस्वीर

किया है। मेडिटेरेनियन मोंक सील दुनिया के 12 सबसे दुर्लभ स्तनधारियों में से एक है। माना जाता है कि वर्तमान में लगभग 700 मेडिटेरेनियन मोंक सील मौजूद हैं, जिनमें से अधिकांश ग्रीस, तुर्की और साइप्रस के तटों पर रहते हैं। अन्य पश्चिमी सहारा और मॉरिटानिया के तट पर रहते हैं।

एराविकुलम राष्ट्रीय उद्यान में बना एक फर्नारियम

केरल में एराविकुलम नेशनल पार्क (ENP) में पार्क के अंदर एक फर्नारियम स्थापित किया गया। फर्न्स (पर्णांग) अधिपादपीय (एपिफाइटिक) परिवार का हिस्सा हैं। पर्णांग प्राकृतिक रूप से मिट्टी रहित स्थिति में बढ़ते हैं तथा पौधे और पेड़ों से लीचिंग के माध्यम से पानी और पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। नए फर्नारियम में फर्न की 52 किस्में पहले ही लगाई जा चुकी हैं।

ओजोन परत ठीक हो रही है और कुछ दशकों में इसके पूरी तरह से ठीक होने की उम्मीद

संयुक्त राष्ट्र समर्थित विशेषज्ञों के पैनल के अनुसार, पृथ्वी की ओजोन परत की चार दशकों के भीतर ठीक होने की उम्मीद है। यह उम्मीद की जा रही है कि यदि मौजूदा परिस्थितियां जारी रहती हैं, तो वर्ष 2040 तक ओजोन परत के 1980 के स्तर तक ठीक होने की उम्मीद है। ये निष्कर्ष, 1987 के मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के लक्ष्य के अनुरूप हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि परत 2045 तक आर्कटिक के ऊपर सामान्य हो जाएगी।

'उबल' रहा यूरोप - तीन दशक में सबसे ज्यादा गर्म हुआ महाद्वीप

जलवायु परिवर्तन पूरी दुनिया को तेजी से गर्म कर रही है। इससे दुनिया भर में तापमान बढ़ने के साथ ही चरम मौसमी घटनाएं देखने को मिल रही हैं। यूरोपीय संघ और विश्व मौसम संगठन की एक संयुक्त रिपोर्ट में बताया किया गया है कि यूरोप दुनिया का सबसे तेजी से गर्म होने वाला महाद्वीप बन चुका है। रिपोर्ट में इस दावा का आधार आज या एक दो साल के आकंड़े नहीं बल्कि 1980 से जमा किए गए आंकड़े हैं। इस आधार पर पाया गया है कि यूरोप का तापमान औसत वैश्विक तापमान से 1980 के दशक की तुलना में दो गुना बढ़ा गया है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 49-50 (2023)

भारत में ई-कुकिंग

कैलाश प्रसाद कुशवाहा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण मुख्यालय, कोलकाता

पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत में तेजी से ई-कुकिंग को अपनाया जा रहा है। सरकार भी ई-कुकिंग को बढ़ावा दे रही है और किफायती ई-कुकिंग समाधानों को लाने पर काम कर रही है। पर्यावरण दिवस, 2023 पर दिल्ली में आयोजित विद्युत मंत्रालय की बैठक में ई-कुकिंग जैसे समाधानों के विकास पर मंथन किया गया। स्वच्छ खाना पकाने पर सरकार की प्राथमिकता पर विद्युत मंत्रालय ने कहा कि सरकार ने उन नीतियों को प्राथमिकता दी है जो स्वच्छ खाना पकाने के ईंधन को बढ़ावा देती हैं। सरकार ने ई-कुकिंग अपनाने को बढ़ावा देने के लिए "गो इलेक्ट्रिक अभियान" शुरू किया है। विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून 2023) के अवसर पर नई दिल्ली में भारत सरकार के "ई-कुकिंग रूपान्तरण के लिए उपभोक्ता-केंद्रित दृष्टिकोण पर सम्मेलन" में ऊर्जा कुशल, स्वच्छ और किफायती ई-कुकिंग समाधानों का पता लगाने के लिए विचार-विमर्श किया गया। इसमें कहा गया कि ई-कुकिंग इस मान्यता पर आधारित है कि यह मिशन लाइफ तक पहुंचने का एक प्रमुख मार्ग है, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रेरित करने का जन आंदोलन है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वर्ष 2021 में ग्लासगो में 26वें संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में इसका शुभारम्भ किया था जिसका उद्देश्य पर्यावरण हितैषी स्थायी जीवनशैली को बढ़ावा देना है। खाना पकाने हेतु स्वच्छ और किफायती ऊर्जा भारत की ऊर्जा परिवर्तन यात्रा का एक अनिवार्य पहलू है जो मिशन लाइफ के लक्ष्यों के अनुरूप है।

स्वच्छ खाना पकाने की ऊर्जा तक पहुंच भारत की ऊर्जा परिवर्तन यात्रा का महत्वपूर्ण पहलू है। खाना पकाने के ईंधन के संबंध में हम जो विकल्प चुनते हैं, वे एक स्थायी अर्थव्यवस्था बनने की दिशा में भारत के पथ पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। भारत के स्वच्छ खाना पकाने के रूपान्तरण के लिए ऊर्जा खपत को चलाने वाले व्यक्तिगत और सामुदायिक कार्यों और निर्णयों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। स्वच्छ खाना पकाने के स्वास्थ्य, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभों को पहचानते हुए सरकार ने उन नीतियों को प्राथमिकता दी है जो स्वच्छ खाना पकाने के ईंधन को बढ़ावा देती हैं। विद्युतीकरण पर सरकार द्वारा विशिष्ट कार्यों के साथ-साथ अक्षय ऊर्जा से उत्पन्न होने वाली बिजली की आपूर्ति की बढ़ोतरी के साथ ई-कुकिंग समाधान भारत को जलवायु-अनुकूल, स्वस्थ और संवहनीय भविष्य की ओर ले जाने का सुअवसर प्रदान करते हैं। इंडक्शन कुकस्टोव के लिए दक्षता नीति के साथ अगला महत्वपूर्ण कदम कुशल और किफायती प्रोडक्ट को व्यापक रूप से अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना है। ई-कुकिंग परिवर्तन शैली में उपभोक्ताओं को रणनीति के केंद्र में रखते हुए उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को समझना और उन्हें एक जन-आंदोलन में भागीदार बनाना इस परिवर्तन का मूल भाव है।

ई-कुकिंग में खाना पकाने के पारंपरिक तरीकों के स्थान पर विद्युत उपकरणों का उपयोग शामिल है। इसमें खाना पकाने के लिए घरों में इलेक्ट्रिक स्टोव, इंडक्शन कुकटॉप्स और अन्य इलेक्ट्रिक कुकिंग डिवाइस को अपनाना शामिल है। विश्वसनीय विद्युत उपलब्धता के साथ ई-कुकिंग भारतीय रसोई का भविष्य बनने की ओर अग्रसर है। खाना पकाने की इलेक्ट्रिक तकनीक इसे शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए एक सुगम विकल्प बनाती है। भारत में विद्युत की उपलब्धि ई-कुकिंग को अपनाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया है। 'सौभाग्य' योजना ने लाखों घरों को विद्युत सुविधा प्रदान करने, विद्युत कटौती को समाप्त करने तथा विद्युत से खाना पकाने के लिये अनुकूल वातावरण बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

गैस सिलेंडर और पीएनजी पर खाना पकाना अब पुरानी बात होने जा रही है। देश में बिजली से चलने वाले चूल्हे और उपकरणों पर खाना पकाने का चलन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। रिसर्च इंस्टीट्यूट काउंसिल ऑन एनर्जी, एनवायरन्मेंट एंड वॉटर की एक स्टडी में दावा किया गया है कि ई-कुकिंग हरित और संवहनीय वातावरण का मार्ग प्रशस्त कर रही है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ने 70 मिलियन से अधिक परिवारों के लिए स्वच्छ और अधिक बेहतर खाना पकाने के ईंधन, तरलीकृत पेट्रोलियम गैस (एलपीजी)

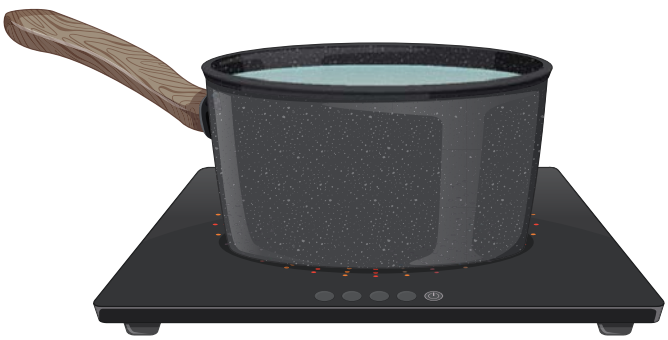

के कवरेज का विस्तार करके लोगों के जीवन में नई सुबह की शुरुआत की। विद्युतीकरण की स्थिति के साथ यह तेजी से ई-कुकिंग को अपनाने का एक बड़ा अवसर प्रदान करता है। दिल्ली, तमिलनाडु, तेलंगाना, असम और केरल में इंडक्शन चूल्हा, चावल पकाने के लिये इलेक्ट्रिक कुकर और माइक्रोवेव ओवन जैसे बिजली से चलने वाले उपकरणों के जरिये खाना पकाने का चलन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। दिल्ली और तमिलनाडु में 17 प्रतिशत परिवारों ने खाना पकाने के लिये इलेक्ट्रिक माध्यमों को अपनाया है जबकि तेलंगाना में यह 15 प्रतिशत है। केरल और असम में 12 प्रतिशत परिवारों ने 'ई-कुकिंग' व्यवस्था को अपनाया है। शहरी परिवार के बीच ई-कुकिंग की पहुंच 10.3 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण परिवार में यह केवल 2.7 प्रतिशत है।

कुल मिलाकर देशभर में केवल 5 प्रतिशत परिवारों ने ई-कुकिंग को अपनाया है। एलपीजी की मौजूदा कीमत को देखते हुए बिजली पर सब्सिडी प्राप्त करने वाले परिवारों के लिये ई-कुकिंग सस्ती है। हालांकि इन उपकरणों की खरीद पर होने वाला शुरुआती खर्च और बिजली से चलने वाले चूल्हे पर खाना पकाने को लेकर धारणा की वजह से शहरी परिवारों में भी इसका उपयोग तेजी से नहीं बढ़ रहा है। ई-कुकिंग अपनाने वाले 93 प्रतिशत परिवार अभी भी लिक्विफाइड नेचुरल गैस पर भरोसा करते हैं और ई-कुकिंग उपकरणों को जरूरत पड़ने पर उपयोग के लिये रखते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, अभी भी खाना पकाने का मुख्य ईंधन एलपीजी ही है और सिर्फ 29 फीसदी लोग ही कम से कम एक बार ई-कुकिंग करते हैं एवं एलपीजी के साथ बैकअप के तौर पर ही लोग ई-कुकिंग कर रहे हैं। दिल्ली में हर 6 में से एक परिवार ई-कुकिंग का इस्तेमाल करता है। इसके तहत पूरा खाना पकाने के लिए नहीं बल्कि, एलपीजी के साथ-साथ इसका इस्तेमाल किया जा रहा है। वो भी इलेक्ट्रिक ओवन, टोस्टर जैसे उपकरण का ज्यादा इस्तेमाल किया जा रहा है।

वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में अभी भी ई-कुकिंग के क्षेत्र में न्यूनतम प्रौद्योगिकी की कमी है। बड़े पैमाने पर सफल ई-कुकिंग मॉडल के प्रतिरूपण तथा धीरे-धीरे पारंपरिक कुकर के स्थान पर इलेक्ट्रिक कुकर को अपनाना उपभोक्ता में विश्वास उत्पन्न कर सकता है। ई-कुकिंग विद्युत क्षेत्र और उपभोक्ताओं दोनों के लिए एक लाभदायक समाधान प्रस्तुत करता है जिससे खाना पकाने की साफ-सुथरी पहुंच और इनडोर वायु गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित होता है। ई-कुकिंग ऊर्जा की खपत को कम कर सकता है तथा एक स्वच्छ एवं पर्यावरण अनुकूल जीवनशैली में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 51 (2023)

हिंदी: हमारी आशा

पेद्दि हरिकृष्णा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद

हिंदी हिंदोस्तान की जान है
बनी हर जन की पहचान है
नित नए शब्दों को अपनाएगी
यूं ही फलती-फूलती जाएगी ।।

राजभाषा से राष्ट्रभाषा बन जाएगी
सभी भारतीयों के दिलों पर छाएगी ।।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक सबको भाएगी
तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और डोगरी सबको गले लगाएगी ।।

न्यायालय की भाषा जिस दिन हिंदी बन जाएगी
संवैधानिक लक्ष्यों की उसी दिन सही में प्राप्ति होगी ।।

भारत की एकता और अखंडता को सुदृढ़ बनाएगी
उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम की संस्कृतियों में घुल-मिल जाएगी ।।

संधि, छंद और समास से यूं ही संवरती जाएगी
कठिन विदेशी शब्दों को भी अपने में समाएगी ।।

अंग्रेजी के वर्चस्व को धीरे-धीरे क्षीण करती जाएगी
भारत के समावेशी विकास की राह सरल बनाएगी ।।

वैश्विक प्रसिद्धि में संयुक्त राष्ट्रसंघ पटल पर छाएगी ।।
यूनेस्को की आधिकारिक भाषाओं में जगह बनाएगी ||

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 52-53 (2023)

वर्गिकी : सामान्य परिचय

अंचल बिश्वास

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

जिस तरह कार्यालयों में भिन्न भिन्न कार्य संबंधी लिखित पत्र पृथक पृथक फाइलों में रखे जाते हैं, उसी तरह अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रजातियों के जंतु और पौधे विभिन्न श्रेणियों में रखे जाएं। इस तरह जंतुओं और पादप के वर्गीकरण को वर्गिकी या वर्गीकरण विज्ञान कहते हैं। अंग्रेजी में वर्गिकी के लिए दो शब्दों का उपयोग होता है, एक है टैक्सॉनोमि (Taxonomy) और दूसरा सिस्टेमैटिक्स (Systematics)। टैक्सॉनोमि शब्द ग्रीक शब्द 'टैक्सिस', जिसका अर्थ है क्रम से रखना और 'नोमोस', जिसका अर्थ है नियम, के जोड़ से हुआ है। अत: टैक्सॉनोमि का अर्थ हुआ क्रम से रखने का नियम। सन्1813 में कान्डॉल (Candolle) ने इस शब्द का प्रयोग पादप वर्गीकरण के लिए किया था। सिस्टेमैटिक्स शब्द 'सिस्टैमा' से बना है। यह लैटिन-ग्रीक शब्द है। इसका प्रयोग प्रारंभिक प्रकृतिवादियों ने वर्गीकरण प्रणाली के लिए किया था। लिनीअस (Linnaeus) ने 1735 ई. में "सिस्टेमा नैचुरी" (Systema Naturee) नामक पुस्तक सिस्टेमैटिक्स शब्द के आधार पर लिखी थी। आधुनिक युग में ये दोनों शब्द पादप और जंतुवर्गीकरण के लिए प्रयुक्त होते हैं।

वर्गिकी का मूल निर्माण आकारिकी या आकृतिविज्ञान (morphology), क्रियाविज्ञान (physiology), पारिस्थितिकी (ecology) और आनुवंशिकी (genetics) पर आधारित है। अन्य वैज्ञानिक अनुशासनों की तरह यह भी अनेक प्रकार के ज्ञान, मत और प्रणालियों का संश्लेषण है, जिसका प्रयोग वर्गीकरण के क्षेत्र में होता है। जीवविज्ञान संबंधी किसी प्रकार के विश्लेषण का प्रथम सोपान है सुव्यवस्थित ढंग से उसका वर्गीकरण। अत: पादप या जंतु के अध्ययन का पहला कदम है उसका नामकरण, वर्गीकरण और तब वर्णन। आजकल चार लाख से अधिक पादप की प्रजातियां ज्ञात हैं। ये लिनीअस के समय से साठ गुनी अधिक हैं। प्रति वर्ष लगभग 4,750 नई प्रजातियों का वर्णन होता है। समानार्थक (synonyms) और उपजातियों (subspecies) को मिलाकर केवल फ़ेनरोगैम्स (Phanerogams) और क्रिप्टौगैम्स (cryptogams) नामक पादप समूहों में 1763 से 1942 ई. तक दस लाख से भी अधिक नाम दिए जा चुके हैं। वर्णित जंतुओं की प्रजातियां गिनती में पादप प्रजातियों से कहीं अधिक हैं। उपजातियों को मिलाकर 20 लाख से अधिक जंतु प्रजातियों के नाम ज्ञात हैं और प्रति वर्ष लगभग 10, 000 नई प्रजातियों का वर्णन होता है।

वर्गीकरण विज्ञान का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव का इतिहास। समझबूझ होते ही मनुष्य ने आसपास के जंतुओं और पौधों को पहचानना तथा उनको नाम देना प्रारंभ किया। ग्रीस के अनेक प्राचीन विद्वान, विशेषत: हिपॉक्रेटीज (Hippocrates, 46-377 ई. पू.) ने और डिमॉक्रिटस (Democritus, 465-370 ई. पू.) ने अपने अध्ययन में जंतुओं को स्थान दिया है। स्पष्ट रूप से ऐरिस्टॉटल (Aristotle, 384-322 ई. पू.) ने अपने समय के ज्ञान का उपयुक्त संकलन किया है। ऐरिस्टॉटल के उल्लेख में वर्गीकरण का प्रारंभ दिखाई पड़ता है। इनका मत है कि जंतु अपने रहन सहन के ढंग, स्वभाव और शारीरिक आकार के आधार पर पृथक किए जा सकते हैं। इन्होंने पक्षी, मछली, ह्वेल, कीट आदि जंतुसमूहों का उल्लेख किया है और छोटे समूहों के लिए कोलियॉप्टेरा (Coleoptera) और डिप्टेरा (Diptera) आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस समय के वनस्पतिविद् ऐरिस्टॉटल की विचारधारा से आगे थे। उन्होंने स्थानीय पौधों का सफल वर्गीकरण कर रखा था। ब्रनफेल्स (Brunfels, 1530 ई.) और बौहिन (Bauhim, 1623 ई.) पादक वर्गीकरण को सफल रास्ते पर लानेवाले वैज्ञानिक थे, परंतु जंतुओं का वर्गीकरण करनेवाले इस समय के विशेषज्ञ अब भी अरस्तू की विचारधारा के अंतर्गत कार्य कर रहे थे।

जंतुशास्त्र विशेषज्ञों में जॉन रे (John Ray 1627-1705 ई.) प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रजाति (species) और वंश (genus) में अंतर स्पष्ट किया और प्राचीन वैज्ञानिकों में ये प्रथम थे, जिन्होंने उच्चतर प्राकृतिक वर्गीकरण किया। इनका प्रभाव स्वीडन के रहनेवाले महान् प्रकृतिवादी लिनीअस (1707-1778) पर पड़ा। लिनीअस ने इस दिशा में अद्वितीय कार्य किया। इसलिए इन्हें वर्गीकरण विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। अठारहवीं शताब्दी में विकासवाद के विचारों का प्रभाव वर्गीकरण विज्ञान पर पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में यह प्रभाव अपने शिखर पर पहुंच गया। इसी समय दूरवर्ती स्थानों के जंतुओं में वर्गीकरण विशेषज्ञों की गंभीर रुचि हो गई थी। वे दूर देशों के जानवरों के विषय में जानकारी हासिल करना चाहते थे और परिचित जानवरों से उनका संबंध स्थापित करना चाहते थे। इसलिए इस समय लंबी जलयात्राएं

हुई। दूर-दूर के जानवरों का अध्ययन किया गया और उनके वंश तथा कुल आदि का अध्ययन किया गया। एक ऐसी यात्रा बीग्ले नामक जहाज पर हुई थी जिसमें चार्ल्स डार्विन नामक प्रकृतिवादी भी सम्मिलित था। इस काल में वर्गीकरण विज्ञान में बड़ी प्रगति की गई और वर्गीकरण में अनेक नई प्रजातियां, वंश और कुल जोड़े गए।

हक्सलि (Huxely, 1940 ई.) के विचारानुसार बीसवीं शताब्दी में किए गए वर्गीकरण विज्ञान की विशेषता है कि आधुनिक वर्गीकरण विज्ञान भूगोल (geography), पारिस्थितिकी (ecology), कोशिकी (cytology) और आनुवंशिकी (genetics) आदि का संश्लेषण है। पहले समय में वर्गीकरण विज्ञान का आधार था 'प्ररूप' (type), जिसको आकृतिक लक्षणों की सहायता से उपस्थित करते थे। आधुनिक वर्गीकरण विज्ञान में प्रजातियों का वर्णन पूर्णतया आकृतिक लक्षणों पर आधारित न होकर जैविक है, जिसकी वजह से भौगोलिक, पारिस्थितिकीय, जननीय तथा कुछ अन्य लक्षणों पर भी ध्यान दिया जाता है। प्ररूप संकल्पना (type concept) श्रेणियों की स्थिरता को विस्तृत रूप देती है, एक दूसरे के बीच अंतर को बढ़ाती है और परिवर्तनशीलता को कम करती है। इसके विपरीत है जनसंख्या संकल्पना (population concept), जिसके अनुसार स्पीशीज़ परिवर्तनशील जनसंख्या से बनी है और स्थिर नहीं है।

उत्क्रम से विशेष समूहों अथवा श्रेणियों को परिभाषित करना वर्गीकरण का निश्चित ढंग है। लिनीअस ने ऐसी पांच श्रेणियां बनाई थीं : क्लासिस (Classic) अथवा वर्ग, गण (Ordo), जीनस (Genus) अथवा वंश, स्पीशीज़ (Species) अथवा प्रजाति और वैराइटाज़ (Varietas) अथवा प्रभेद। प्रत्येक श्रेणी में एक अथवा एक से अधिक नीचे स्तर के समूह सम्मिलित होते हैं और वे निम्न श्रेणी बनाते हैं। इसी तरह प्रत्येक क्रमिक श्रेणी एक अथवा एक से अधिक ऊंची श्रेणी से संबंधित होती है। ये श्रेणियां प्राकृतिक प्रभेद कम करके एक व्यापक प्रणाली बना देती हैं। ज्ञान के विकास के साथ साथ इन श्रेणियों की संख्या बढ़ती गई। जगत और वर्ग के बीच संघ और गण (order) तथा वंश के बीच में कुल नामक श्रेणियां जोड़ी गई। लिनीअस के विचारानुसार प्रभेद (Varietas) एक वैकल्पिक श्रेणी है, जिसके अंतर्गत भौगोलिक अथवा व्यक्तिगत विभिन्नता आती है। इस तरह अब निम्न सात श्रेणियां हो गई हैं : जगत (Kingdom), संघ (Phylum), वर्ग (Class), गण (Order), कुल (Family), वंश (Genus) और प्रजाति (Species)। वर्गीकरण की और अधिक परिशुद्ध व्याख्या के लिए इन श्रेणियों को भी विभाजित कर अन्य श्रेणियां बनाई गई हैं। अधिकतर मूल नाम के पहले अधि (super) अथवा उप (sub) उपसर्गों (prefixes) को जोड़कर इन श्रेणियों का नामकरण किया गया है। उदाहरणार्थ, अधिगण (super order) और उपगण (suborder) आदि। ऊंची श्रेणियों के लिए कई नाम प्रस्तावित किए गए, परंतु सामान्य प्रयोग में वे नहीं आते। केवल आदिम प्रजाति (tribe) का कुल और वंश के बीच प्रयोग किया जाता है। कुछ लेखकों ने, जैसे सिंपसन, (Simpson, 1945 ई.) ने गण और वर्ग के बीच सहगण (Cohort) नाम का प्रयोग किया है। इस तरह साधारण तौर से काम लाई जानेवाली श्रेणियों की संख्या इस समय निम्नलिखित है : जगत (Kingdom), संघ (Phylum), उपसंघ (Subphylum), अधिवर्ग (Superclass), वर्ग (Class), उपवर्ग (Subclass), सहगण या कोहॉर्ट (Cohort), अधिगण (Superorder), गण (Order), उपगण (Suborder), अधिकुल (Superfamily), कुल (Family), उपकुल (Subfamily), आदिम जाति (Tribe), वंश (Genus), उपवंश (Subgenus), प्रजाति (Species) तथा उपजाति (Subspecies)।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 54-56 (2023)

भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी कानूनों का क्रमिक विकास

नीलिमा ऐ. एम.

भारतीय वनस्पति संरक्षण, केंद्रीय क्षेत्रीय केंद्र, इलाहाबाद

भारत में एक स्वच्छ, सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण के अधिकार संबंधी पर्यावरणीय प्रावधानों का लंबा इतिहास रहा है। प्रकृति और जैव विविधता के संरक्षण संबंधी प्रयासों की जड़ हमारे भारतीय संस्कृति में है जिनका उल्लेख हमारे पौराणिक महाकाव्यों में मिलता है। हिंदू पौराणिक कथाओं, वेदों, पुराणों, उपनिषदों और हिंदू धर्म के अन्य प्राचीन ग्रंथों में पेड़-पौधों और वन्य जीवन के महत्व का विस्तृत विवरण दिया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसंग के अनुसार, पेड़ों की अनावश्यक कटाई पर प्रतिबंध लगा हुआ था और इस तरह के कृत्यों के लिए दंड भी निर्धारित किये गए थे। मौर्य काल में रचित कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वन प्रशासन पर अलग से विस्तारित विवरण दिए गए हैं और अशोक के पांचवे स्तंभ अध्यादेश में राज्य में प्राणियों के कल्याण के बारे में विचार दिए गए हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यताओं के साक्ष्य से यह साबित हो चुका है कि छोटी आबादियां अपने पारितंत्र के अनुकूल रहकर अपनी जरूरतों को पूरा करते थे तथा पर्यावण के साथ समरसता बनाकर रहते थे। इन पवित्र ग्रंथों से हमें यह पता चलता है कि हमारा भारतीय समाज वनों की कटाई और विलुप्त होने के कारण होने वाले प्रतिकूल पर्यावरणीय दुष्प्रभावों के प्रति कितने सजग थे।

भारत में ब्रिटिशराज के दौरान पर्यावरण संरक्षण के प्रति न केवल पूर्ण उदासीनता दिखी बल्कि औपनिवेशिक प्रशासन ने हमारे प्राकृतिक संसाधनों की भी लूट मचाई। आरंभिक पर्यावरण कानून के सामान्य अवलोकन से पता चलता है कि वन कानूनों के अलावा उन्नीसवीं सदी के विधेयक ने भी भारतीय पर्यावरण के दो अन्य पहलुओं जल प्रदूषण और वन्यजीव को आंशिक रूप से विनियमित किया है। कुछ शुरुआती प्रयासों में तट न्यूसेंस (बॉम्बे और कोलाबा) अधिनियम, 1853 और ओरिएंटल गैस कंपनी अधिनियम, 1857 शामिल है। 1860 में अधिनियमित भारतीय दंड संहिता में सार्वजनिक झरना या जलाशय का पानी मलिन करनेवाले व्यक्ति पर जुर्माना लगाने का

प्रावधान किया गया। इसके अलावा, जीवन के लिए खतरे पैदा करने वाले जहरीले पदार्थों को मनमाने तरीके से व्यवहार करने वाले व्यक्ति को भी दंडित करने का प्रावधान किया गया। वन्यजीव संरक्षण के क्षेत्र में, आरंभिक विधेयकों का लक्ष्य जैव विविधता का संरक्षण था, इसलिए इनका दायरा विशिष्ट क्षेत्रों और खास प्रजातियों तक ही सीमित था। अंग्रेजों द्वारा पारित विधेयकों का भारत में पर्यावरण संबंधी विधिशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत, भारत सरकार ने हमारे पर्यावरण की रक्षा के लिए कई विधेयक और कानून पारित की है। विभिन्न पर्यावरणीय मुद्दों पर कार्य करने के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, राष्ट्रीय सरकारों और सिविल सोसाइटी द्वारा कई पर्यावरण संबंधी संस्थाएं और संगठन स्थापित किए गए हैं। प्रदूषण नियंत्रण को पहला सार्थक और यथार्थपरक आयाम स्टॉकहोम में जून 1972 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन से मिला। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा रियो डी जेनेरो में 3 जून से 14 जून 1992 तक आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण और विकास पर अबतक के सबसे क्रांतिकारी कदम उठाए गए। 1970 के दशक में भारत सरकार की नीतियों और दृष्टिकोणों में काफी बदलाव देखा गया। अभी तक के उदासीनता भरे रवैये में बदलाव हुआ और पर्यावरण की स्थिति को सुधारने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। वर्ष 1972 में पर्यावरण संबंधी मुद्दों को सुलझाने के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण योजना एवं समन्वय समिति (एनसीईपीसी) का गठन हुआ जो भारत में पर्यावरण प्रबंधन में एक ऐतिहासिक घटना का प्रतीक बन गई क्योंकि अभी तक हमारे देश की सरकार की भूमिका पर्यावरण, प्रदूषण नियंत्रण, संरक्षण एवं संधारणीय विकास आदि नीतियों के संदर्भ में काफी आलोचनात्मक थी और वर्ष 1972 से पहले पर्यावरण संबंधी मामलें ज्यादातर मलजल निस्तारण, स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य तक ही सीमित थे। स्टॉकहोम घोषणा के तुरंत बाद, राष्ट्रीय विधिक प्रणाली में पर्यावरण संरक्षण को संवैधानिक दर्जा देने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। भारत ने 1976 में पर्यावरण विशिष्ट प्रावधानों को शामिल करने के लिए संविधान में संशोधन किया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 21 की व्याख्या व्यापक अर्थ में की और एक स्वच्छ, सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण को मौलिक अधिकार माना है तथा धारा 32 के तहत जनहित याचिकाओं पर कार्रवाइयां भी की गई है। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को भी यह अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया है जो संबंधित मामलों में परमादेश, आदेश और निर्देश पारित करके हस्तक्षेप कर सकते हैं।

स्टॉकहोम सम्मेलन के ठीक दो साल बाद वर्ष 1974 में जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के उद्देश्य से जल (रोकथाम और प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम पारित किया गया। कानूनी दृष्टिकोण से देखा जाए तो जल अधिनियम पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने के लिए भारत का पहला ऐसा कानून था। 42वें संवैधानिक संशोधन से पहले राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति झुकाव दिखता है। इसका उल्लेख संविधान की धारा 39 (ब), धारा 47, धारा 48 और धारा 49 में है। संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों का देश में सामान्य स्वास्थ्य स्तर की स्थिति में व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से सुधार करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्ष 1976 में भारत के संविधान में संशोधन करके मौलिक कर्तव्य अध्याय के अंतर्गत पर्यावरण-विशिष्ट प्रावधानों को सम्मिलित किया गया। 1980 के दशक में भारत में कई पर्यावरण संबंधी संस्थाओं का गठन हुआ। वनों के संरक्षण और भविष्य में वनों की अंधाधुंध कटाई पर नियंत्रण करने के लिए वर्ष 1980 में वन (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया। वर्ष 1981 में केंद्र सरकार ने संविधान के अनुछेद 253 के तहत वायु (प्रदूषण और नियंत्रण) अधिनियम पारित किया। भोपाल गैस त्रासदी के मद्देनजर, भारत सरकार ने पर्यावरण संरक्षण के लिए मुख्य भूमिका निभाने के लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 लागू किया। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 2 (अ) के अनुसार : 'पर्यावरण' शब्द के अंतर्गत जल, वायु और भूमि है और वह अंतर संबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और संपत्ति के बीच विद्यमान हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 से पहले पारित कानून मूलत: विशिष्ट प्रदूषकों (जैसे वायु और जल) पर केंद्रित थे। इसके अलावा, इस दौरन कई अधिसूचनाएं और नियम भी लागू किए गए जिनमें प्रमुख रूप से परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबंधन और प्रहस्तन) नियम 1989; जैव-चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन और प्रहस्तन) नियम 1998; पुन:चक्रित प्लास्टिक विनिर्माण और उपयोग नियम 1999; पर्यावरण (औद्योगिक परियोजनाओं हेतु अवसादन) नियम 1999 और नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन और प्रहस्तन) नियम 2000 आदि शामिल हैं। इन पर्यावरण-विशिष्ट विधानों के अलावा, भारत सरकार ने जैव विविधता पर सम्मेलन के समझौते के तहत अपने अंतरराष्ट्रीय दायित्व को पूरा करते हुए भारत में जैव विविधता को बनाए रखने के लिए जैव विविधता अधिनियम, 2002 लागू किया। अप्रैल 2004 में, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने जैव विविधता अधिनियम, 2002 को अधिसूचित किया।

पिछले तीन दशकों के दौरान पर्यावरणीय अधिकारों की अवधारणा में प्रमुख बदलाव हुए हैं। इसका मुख्य कारण है कि इस दौरान विश्व भर में कई सहयोगी संगठनों का गठन और विस्तार हुआ है। स्टॉकहोम सम्मेलन ने दुनिया भर में होने वाले पर्यावरण क्षरण पर महत्वपूर्ण

प्रकाश डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत के न्यायालयों ने पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न मुद्दों को विधिशास्त्र के दायरे में लाकर गुणात्मक जीवन शैली को बढ़ाने में विशिष्ट भूमिका निभाई है तथा पर्यावरण के लिए बड़े संकट पैदा करने वाली गतिविधियों पर अंकुश लग गए हैं। कुछ मामलों में संविधान के व्यापक परिप्रेक्ष्य को शामिल किया गया है। भारतीय दंड संहिता में सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, सुविधा (अध्याय XIV) को प्रभावित करने वाले अपराधों पर एक समर्पित अध्याय है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) की स्थापना पर्यावरण संरक्षण और संरक्षण से संबंधित मामलों को प्रभावी और त्वरित रूप से निपटान करने के लिए लागू किया गया है। राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण अधिनियम, 2010 लागू होने के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 आदि कानूनों को रद्द कर दिया गया है। जनहित याचिका पर्यावरण संबंधी नियमों में सुधार के लिए भारतीय पर्यावरण कानून का सबसे अनोखा उपकरण है। 1985 के बाद से भारत में न्यायलयों में पर्यावरण संबंधी अधिकांश मामलों को जनहित याचिकाओं के माध्यम से उठाया गया है। 1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण योजना ने पर्यावरण आकलन (सिद्धांत 4) के संचालन के लिए दिशा-निर्देश जारी किए थे जिन्हें दुनिया भर में मोटे तौर पर अपनाया गया था। 1994 में भारत में पहली पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अधिसूचना जारी की गई थी और इसके तहत किसी भी परियोजना को मंजूरी देने के लिए समान तरीका निर्दिष्ट किया गया। समय के साथ-साथ पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन नियमों में भी संशोधन हुए।

भारत सरकार ने 2014 में, देश के छह पर्यावरण कानूनों में संशोधन की सुझाव देने के लिए एक समिति बनाई, जो सभी पर्यावरण विनियमों का आधार बनती है : पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986; वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980; वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972; जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974; वायु (रोकथाम और प्रदूषण का नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और भारतीय वन अधिनियम 1927। ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) अधिनियम, 2000 के अनुसार राज्य सरकार को औद्योगिक, वाणिज्यिक और आवासीय या मौन क्षेत्र को वर्गीकृत करके ध्वनि मानकों को लागू करना है। यद्यपि इस अधिनियम के लागू हुए 17 साल हो चुके हैं, फिर भी 23 राज्यों ने अभी तक लोक जैव विविधता रजिस्टर (पीबीआर) तैयार नहीं किया है जिसे किसी क्षेत्र के जैव संसाधनों जैसे पौधों, स्थानीय लोगों और पशुओं संबंधी पारंपरिक ज्ञान का बुनियादी सूचकांक माना जाता है। 2018 में सरकार ने पर्यावरण नियमों को सरल बनाने के लिए 50,000 वर्ग मीटर से कम की परियोजनाओं के लिए हरित मंजूरी लेने की अनिवार्यता को हटा दिया। दूसरी तरफ पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) अधिसूचना, 2006 के तहत 20,000 वर्ग मीटर से अधिक की परिधि वाली किसी भी परियोजना के लिए हरित मंजूरी की अनिवार्यता थी। दिसंबर, 2016 में पर्यावण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने एक नई प्रणाली शुरू की जिसमें 300,000 वर्ग मीटर तक की परियोजनाओं को अनिवार्य पर्यावरणीय मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन इसके बारे में राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण में जनवरी, 2018 में पर्यावरण मूल्यांकन के प्रावधानों को दरकिनार करने के आरोप पर चुनौती दी गई। पर्यावण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने पूरे भारत में वृक्षारोपण के लिए 660 अरब रुपये के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए मुआवजापूर्ण निधि (सीएएफ) नियम, 2018 को अधिसूचित किया। इस संबंध में, पर्यावरणविदों और नागरिक समाज समूहों ने तर्क दिया कि उक्त नियम से वनवासियों और जनजातियों के अधिकारों का हनन होता है और नए नियम मौजूदा कानूनों के खिलाफ हैं जो आरक्षित क्षेत्रों और वन अधिकारों में जनजातियों के स्वशासन अधिकारों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार, हम पाते हैं कि भारत में पर्यावरण संबंधी नियमों, अधिनियमों और कानूनों के कार्यान्वयन से स्वस्थ परिवेश बनाए रखने के लिए संवैधानिक अधिकार को आकार मिला है। इससे भारतीय न्यायपालिका में एक अतुलनीय पर्यावरण विधिशास्त्र का जन्म हुआ है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 57-58 (2023)

हिन्दी दिवस का वर्तमान परिप्रेक्ष्य

प्रेस विज्ञप्ति, राजभाषा विभाग, भारत सरकार

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय से वैश्विक मंचों तक उचित सम्मान मिला है। हिंदी एक जनतांत्रिक भाषा रही है, इसने अलग-अलग भारतीय भाषाओं और बोलियों के साथ-साथ कई वैश्विक भाषाओं को सम्मान दिया है और उनकी शब्दावलियों, पदों और व्याकरण के नियमों को अपनाया है। किसी भी देश की मौलिक और सृजनात्मक अभिव्यक्ति सही मायनों में सिर्फ उस देश की अपनी भाषा में ही की जा सकती है, हमारी सभी भारतीय भाषाएँ और बोलियाँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं जिन्हें हमें साथ लेकर चलना है। हिंदी की किसी भी भारतीय भाषा से न कभी कोई स्पर्धा थी और न ही कभी हो सकती है। हमारी सभी भाषाओं को सशक्त करने से ही एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण होगा, हिंदी सभी स्थानीय भाषाओं को सशक्त बनाने का माध्यम बनेगी। गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग निरंतर प्रयत्नशील है कि शहद समान मीठी भारतीय भाषाओं को आधुनिक तकनीक के माध्यम से सार्वजनिक, प्रशासन, शिक्षा और वैज्ञानिक प्रयोग के अनुकूल उपयोगी बनाया जा सके।

केन्द्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह ने देशवासियों को 14 सितंबर, 2023 को हिंदी दिवस की शुभकामनाएँ देते हुए अपने संदेश में कहा कि भारत, विविध भाषाओं का देश रहा है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की भाषाओं की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोने का नाम 'हिंदी' है। उन्होने कहा कि हिंदी एक जनतांत्रिक भाषा के रूप में अलग-अलग भारतीय भाषाओं और बोलियों के साथ-साथ कई वैश्विक भाषाओं को सम्मान दिया है और उनकी शब्दावलियों, पदों और व्याकरण के नियमों को अपनाया है। केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा कि हिंदी भाषा ने स्वतंत्रता आन्दोलन के मुश्किल दिनों में देश को एकसूत्र में बाँधने का अभूतपूर्व कार्य किया। इसने अनेक भाषाओं और

चित्र 1 : पुणे में आयोजित हिंदी दिवस समारोह – 2023 एवं तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन

बोलियों में बँटे देश में एकता की भावना स्थापित की। देश में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक स्वतंत्रता की लड़ाई को आगे बढ़ाने में संवाद भाषा के रूप में हिंदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। श्री शाह ने कहा कि देश में 'स्वराज' प्राप्ति और 'स्वभाषा' के आन्दोलन एकसाथ चल रहे थे। स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर 1949 के दिन ही हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था।

गृह मंत्री ने कहा कि किसी भी देश की मौलिक और सृजनात्मक अभिव्यक्ति सही मायनों में सिर्फ उस देश की अपनी भाषा में ही की जा सकती है। उन्होने कहा कि प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने लिखा है कि, "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल", यानि, अपनी भाषा की उन्नति ही सभी प्रकार की उन्नति का मूल है। श्री शाह ने कहा कि हमारी सभी भारतीय भाषाएँ और बोलियाँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं जिन्हें हमें साथ लेकर चलना है। हिंदी की किसी भी भारतीय भाषा से न कभी कोई स्पर्धा थी और न ही कभी हो सकती है। हमारी सभी भाषाओं को सशक्त करने से ही एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण होगा। श्री अमित शाह ने कहा कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के मार्गदर्शन में सरकार और जनता के बीच भारतीय भाषाओं में संवाद स्थापित कर जनकल्याणकारी योजनाओं को प्रभावी तौर पर लागू किया जा रहा है।

केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा कि देश में राजभाषा में हुए कार्यों की समय-समय पर समीक्षा के लिए संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया था और इसे उत्तरदायित्त्व दिया गया था कि यह देश में सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग में हुई प्रगति की समीक्षा करे और इसकी रिपोर्ट बनाकर माननीय राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत करे। अभी तक राष्ट्रपति जी को इस रिपोर्ट का 12वाँ खंड प्रस्तुत किया जा चुका है। 2014 तक इस रिपोर्ट के 9 खंड ही सौंपे गए थे, लेकिन पिछले 4 वर्षों में ही 3 खंड प्रस्तुत किये जा चुके हैं। 2019 से सभी 59 मंत्रालयों में हिंदी सलाहकार समितियों का गठन किया जा चुका है तथा इनकी बैठकें भी नियमित रूप से आयोजित की जा रही हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ाने की दृष्टि से अब तक कुल 528 नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन भी किया जा चुका है। विदेशों में भी लंदन, सिंगापुर, फिजी, दुबई और पोर्ट-लुई में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी भाषा के उपयोग को बढ़ावा देने की भी पहल की है।

गृह मंत्री ने कहा कि राजभाषा विभाग द्वारा 'अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' की भी नई परम्परा शुरू की गई है। 13-14 नवंबर, 2021 को बनारस में पहला और 14 सितम्बर 2022 को सूरत में दूसरा अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन आयोजित किया गया। इस साल पुणे में 13-14 सितंबर, 2023 को तीसरा अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन आयोजित किया गया। उन्होंने कहा कि राजभाषा को तकनीक के अनुसार विकसित बनाने के लिए राजभाषा विभाग ने स्मृति आधारित अनुवाद प्रणाली 'कंठस्थ' का निर्माण भी किया है। राजभाषा विभाग ने एक नई पहल करते हुए 'हिंदी शब्द सिंधु' शब्दकोश का भी निर्माण किया है। इस शब्दकोश में संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल भारतीय भाषाओं के शब्दों को शामिल कर इसे निरंतर समृद्ध किया जा रहा है। विभाग ने कुल 90 हजार शब्द का एक 'ई-महाशब्दकोष' मोबाइल एप्प और करीब 9 हजार वाक्य का 'ई-सरल' वाक्यकोश भी तैयार किया है।

केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा कि भाषा परिवर्तन का सिद्धांत यह कहता है कि "भाषा जटिलता से, सरलता की ओर जाती है"। मेरे विचार से हिंदी के सरल और सुस्पष्ट शब्दों को कार्यालयी कामकाज में प्रयोग में लाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि राजभाषा विभाग के इन प्रयासों से सभी मातृभाषाओं को आत्मसात करते हुए लोक-सम्मत भाषा हिंदी, विज्ञान-सम्मत और तकनीक-सम्मत होकर संपन्न राजभाषा के रूप में स्थापित होगी।

स्रोत : प्रेस विज्ञप्ति, राजभाषा विभाग

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 59-61 (2023)

राजभाषा हिंदी का वैज्ञानिक और प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान

हिन्दी अनुभाग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

वर्तमान युग में विज्ञान संबंधी ज्ञान को जन साधारण की भाषा में आम जन तक पहुंचाना अति आवश्यक है। वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं इसके अन्य पहलुओं का संप्रेषण जनमानस तक अंग्रेजी भाषा में नहीं बल्कि देसी भाषा में अधिक कारगर तरीके से होता है। इसलिए राजभाषा हिंदी में तकनीकी व वैज्ञानिक शिक्षण के लिये नये सिरे से सोचना बेहद जरुरी है। अब इसे शिक्षण और प्रशिक्षण की सार्थक भाषा बनाने हेतु हमें नई परियोजनाओं के बारे में भी सोचना होगा। हमें चाहिये कि अनुसंधान एवं सर्जन के लिये सरल शब्दों की संरचना द्वारा भाषा को सरल बनाकर बोलचाल की भाषा से थोड़ी परिष्कृत किया जाए जिसे हर एक आम आदमी आसानी से समझ सके। इतना ही नहीं अंग्रेजी के बेहद प्रचलित शब्दों को भी जो विज्ञान, प्रशासन इत्यादि से जुड़े हैं, उन शब्दों के इस्तेमाल की भी अनुमति देनी होगी। तभी हम हमारी राजभाषा के वैज्ञानिक, तकनीकी व प्रशासनिक क्षेत्रों में लाभ उठाते हुए देश को उन्नत कर पायेंगे।

आज तकनीकी और प्रौद्योगिकी में विकास के साथ कंप्यूटर लिपि-अक्षर (Fonts) 'युनिकोड' में बहुत सरल हो गये हैं। हिंदी मनीषियों के लिये अपनी बात हिंदी के माध्यम से सरलता से लोगों के समक्ष रखना आज आम बात है। इसी कारण आज हिंदी में विज्ञान का भविष्य उज्जवल दिखाई दे रहा है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय निदेशालय, हिंदी ग्रंथ अकादमी और कुछ स्वंयसेवी संस्थाओं के द्वारा इस विषय पर महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अभिव्यक्त करने के लिये सदैव चुनौतियों का सामना करना ही होता है। जीवन को संचालित करने हेतु अनुभव और ज्ञान का संतुलन बनाये रखना बेहद आवश्यक है और इन दोनों ही से विकास की अतुलनीय समृद्धि होती है।

राजभाषा हिंदी का वैज्ञानिक क्षेत्र में योगदान

पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री पी.वी. नरसिंहराव ने लिखा है 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र न तो मौलिक ढंग से विकास कर सकता है और न तो अपनी विशिष्ट वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय पहचान बना सकता है। विदेशी भाषा से अनुवाद की बैसाखी का सहारा भी अधिक समय तक नहीं लिया जा सकता है।' विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी इस शताब्दी के प्रमुख एवं प्रखर स्वर हैं। आज साहित्य एवं दर्शन परिवर्तन का इतना बड़ा माध्यम नहीं जितना विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हैं। आज के युग को विज्ञान का युग कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। परन्तु इसके साथ-साथ आज का युग जन साधारण का भी युग है। इस युग को अधिकतम उपादेय एवं प्रभावी बनाने के लिए जन साधारण को विज्ञान के साथ जोड़ना ही आज विज्ञान लेखन का परम लक्ष्य होना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जन साधारण के बीच वैज्ञानिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने की अर्थात वैज्ञानिक जागरूकता लाने की विशेष आवश्यकता है। वैज्ञानिक जागरूकता को विकसित करने का सबसे सशक्त तथा समर्थ माध्यम है **विज्ञान लेखन**। जन मानस की वैज्ञानिक मनोवृत्ति को जगाने और जीवन तथा विज्ञान के बीच सार्थक

प्रतीकात्मक तस्वीर

समन्वय स्थापित करने के लिए यदि लेखन को एक सशक्त माध्यम मान लिया जाय तो ऐसे लेखन के माध्यम या वाहक के रूप में भाषा की महत्ता अपने आप स्थापित हो जाती है। यदि विज्ञान को जनमानस की संवेदना का हिस्सा बनाना है, तो हमें भारतीय भाषाओं की और विशेष रूप से राजभाषा हिन्दी की महत्ता को समझना ही पड़ेगा।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के सृजन में आज उल्लेखनीय प्रगति हुई है। आज वैज्ञानिक कोश और पारिभाषिक कोश विज्ञान की लगभग हर विधा के लिए उपलब्ध हैं। इसके लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली ने प्रशंसनीय कार्य किया है। हमारे देश के वरिष्ठ तथा हिन्दी के प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक डॉ. शिव गोपाल मिश्र के अनुसार आज हिन्दी में 3500 से अधिक विज्ञान लेखक हैं जिनमें 150 महिलाएं हैं तथा अभी तक 8000 हजार से भी अधिक विज्ञान संबंधी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। उनका कहना है कि हम जिन्हें लोकप्रिय विज्ञान लेखक कहते हैं आजकल वे ही छाए हुए हैं। जिन्होंने हिन्दी में विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें लिखी हैं और प्रतियोगिता वाली पत्रिकाओं के लिए लगातार लिखते रहते हैं, वे हाई स्कूल से लेकर महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों के परिसरों तक व्याप्त हैं। हर्ष की बात है कि हिन्दी भाषा में विज्ञान की पत्रिकाओं का अवश्य विस्तार हुआ है जो विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में सक्रिय हैं। कुछ प्रमुख पत्रिकाओं के नाम निम्नांकित है :

विज्ञान (इलाहाबाद), संदर्भ (होशंगाबाद), स्रोत (भोपाल), विज्ञान चेतना (जयपुर), विज्ञान आपके लिए (गाजियाबाद), सामयिक नेहा (गोरखपुर), विज्ञान भारती प्रदीपिका (जबलपुर)। इसके अतिरिक्त विज्ञान प्रगति, विज्ञान लोक, विज्ञान जगत, अविष्कार तथा विज्ञान गरिमा सिंधु आदि पत्रिकाएं भी उल्लेखनीय हैं।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली का हिन्दी में अब अभाव नहीं है, परन्तु विज्ञान लेखक इसका समुचित उपयोग नहीं कर रहे हैं और तमाम लेखक स्वयं नित नए शब्द गढ़ रहे हैं। इस अराजक स्थिति के निम्नलिखित कारण हैं :

1. एक तो भाषागत कठिनाई

2. वैज्ञानिक जगत की घोर उपेक्षा

3. हिन्दी में लिखे आलेखों और शोधपत्रों को प्रस्तुत करने के लिए मंचों का अभाव

4. प्रकाशन की असुविधा

आज भी शैक्सपियर और कालिदास की कृतियां पढ़ी जाती हैं, किन्तु न्यूटन के वैज्ञानिक ग्रंन्थ "प्रिसिंपिया मैथेमैटिका" और आइन्सटाइन के मूल विज्ञान शोध पत्रों को अधिकांश लोग पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते। वास्तव में विज्ञान के लिये अपनी राजभाषा में प्रस्तुति अति महत्वपूर्ण है।

राजभाषा हिंदी का तकनीकी क्षेत्र में योगदान

सूचना व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों से तीव्र गति से विकास हुआ है। यह मनुष्य को सोचने-विचारने और संप्रेषण करने के लिए तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत कंप्यूटर के साथ-साथ माइक्रोइलेक्ट्रोनिक्स और संचार प्रौद्योगिकी के शामिल होने के कारण इसके विकास का नवीनतम रूप हमें इंटरनेट, मोबाइल, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, उपग्रह प्रसारण, कंप्यूटर के रूप में हमें दिखाई दे रहा है। आज सूचना प्रौद्योगिकी की विस्तृत भूमिका को देखते हुए विश्व स्तर पर हिंदी भौगोलिक सीमाओं को पार कर सूचना प्रौद्योगिकी के परिवर्तित परिदृश्य में विभिन्न जनसंचार माध्यमों तक पहुंच रही है। हिंदी के नए सॉफ्टवेयर हों या इंटरनेट, कंप्यूटर टेक्नोलॉजी अनेक चुनौतियों को स्वीकार कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जन-माध्यमों में अपनी मानक भूमिका के लिए संघर्षरत है।

राजभाषा विभाग, 'प्रगत संगणन विकास केन्द्र (सी-डैक)', पुणे के माध्यम से कंप्यूटर पर हिंदी के प्रयोग को सरल व कुशल बनाने के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयरों द्वारा हिंदी भाषा को तकनीकी से जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है। 'एप्लाइड आर्टिफिशियल इंटैलीजेंस ग्रुप, प्रगत संगणन विकास केंद्र, पुणे द्वारा निर्मित सॉफ्टवेयर में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से इंटरनेट पर हिंदी सीखने के लिए **लीला सॉफ्टवेयर** विकसित किया गया है। लीला सॉफ्टवेयर से इंटरनेट पर अंग्रेजी सहित असमिया, बांग्ला, कन्नड़, बोडो, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, गुजराती, नेपाली और कश्मीरी में हिंदी प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठयक्रम सीखे जा सकते हैं।

हिंदी प्रबोध, प्रवीण एवं प्राज्ञ पाठक्रम के प्रशिक्षण के मूल्यांकन हेतु ऑनलाइन परीक्षा प्रणाली भी विकसित की जा रही है। अब इंटरनेट के माध्यम से ही परीक्षा दी जा सकेगी। द्विभाषी- द्विआयामी अंग्रेज़ी-हिंदी उच्चारण सहित ई-महाशब्दकोश का विकास भी किया गया है। ई-महाशब्दकोश में हर शब्द का उच्चारण दिया गया है जो कि किसी और शब्दकोश में नहीं मिलता। हिंदी शब्द देकर भी उसका अंग्रेज़ी में अर्थ खोजना संभव हो पाया है। इसमें उपलब्ध प्रत्येक अंग्रेज़ी और हिंदी शब्द के प्रयोग भी दिए गए हैं।

आज के दौर में इंटरनेट पर सभी तरह की महत्वपूर्ण जानकारियां व सूचनाएं उपलब्ध हैं जैसे परीक्षाओं के परिणाम, समाचार, ई-मेल, विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएं, साहित्य, अति महत्वपूर्ण जानकारी युक्त डिजिटल पुस्तकालय आदि। परन्तु इनमें से ज्यादातर अंग्रेज़ी भाषा में होते हैं। इसलिए आज यह जरुरी है कि ये जानकारियां हिंदी में भी उपलब्ध कराई जाए। कम्प्यूटर पर भाषाओं के बीच एक पुल बनाने के लिए **'मंत्र' प्रोजेक्ट** के तहत हिंदी सॉफ़्टवेयर के विकास के सहयोग से यह कुछ हद तक मुमकिन होता दिख रहा है। आने वाली शताब्दी अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति की शताब्दी होगी और सम्प्रेषण के नए-नए माध्यमों व आविष्कारों से वैश्वीकरण के नित्य नए क्षितिज उद्घाटित होंगे। इस सारी प्रक्रिया में अनुवाद की महती भूमिका होगी। इससे "वसुधैव कुटुम्बकम्" की उपनिषदीय अवधारणा साकार होगी। इस दृष्टि से सम्प्रेषण-व्यापार के उन्नायक के रूप में अनुवादक एवं अनुवाद की भूमिका निर्विवाद रूप से अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

राजभाषा का प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान

हम हिन्दी का इस्तेमाल ज्यादातर बोलचाल की भाषा के रूप में करते हैं तो उसे पूर्णतया कार्यरूप में अपनाने का भी प्रयास किया जाना चाहिए। इसलिए हम हिन्दी भाषी बनें, हिन्दी में सोचें, बोलें तथा लिखें भी। इस सोच के कारण ही आज प्रशासनिक कार्य राजभाषा में होना अनिवार्य बन चुका है। किसी भी संस्था की गृह पत्रिका उसकी सतत क्रियाशीलता, जागरुकता एवं उपलब्धियों की प्रतिबिम्ब होती है। केन्द्र में हो रहे विभिन्न कार्यकलापों तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधान कार्यों को जन-साधारण तक पहुंचाने में ये पत्रिकाएं अहम भूमिका निभा रही हैं। केन्द्र में राजभाषा के प्रयोग को उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए नियमित रूप से हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन भी संस्थानों में किया जा रहा है। इन कार्यशालाओं में प्रशासन व लेखा अनुभाग में कार्यरत कर्मचारी भाग लेते हैं जिनमें केन्द्र के या केन्द्र के बाहर के विषय-विशेषज्ञ, कर्मचारियों को हिन्दी में सरलता से काम करने के महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा व प्रोत्साहन देते हैं। केंद्र सरकार के कार्यालयों में राजभाषा हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं चलाई जा रही हैं।

वैज्ञानिक युग में हिन्दी की उपादेयता समाप्त नहीं हुई है। हिन्दी भाषा एक जीवंत भाषा है और अपनी संप्रेषणीयता के कारण ही हिन्दी स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बन पाई। हिन्दी को क्लिष्ट भाषा न बनाते हुए इसके सरलीकरण पर अगर जोर दिया जाये तो अवश्य ही ये अपना योगदान का दायरा वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्रों में बढ़ा सकती है। वैश्वीकरण के दौर में आज परिस्थितियां बदल गई हैं और समस्त टी.वी.चैनलों, सिनेमा एवं एफ.एम. रेडियो इत्यादि में आज यह भाषा एक आवश्यकता के रूप में ऊभर कर सामने आ रही है जो हम भारतीयों के लिये गर्व की बात है।

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 62-63 (2023)

राजभाषा हिंदी : एक विश्लेषण

हिन्दी अनुभाग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

मानव जाति प्रारंभ से ही स्वयं को अभिव्यक्त करने का माध्यम खोजती रही है। आपसी संकेतों के सहारे एक-दूसरे को समझने की ये कोशिशें अभिव्यक्ति के सर्वोच्च शिखर पर तब पहुंच गई जब भाषा का विकास हुआ। भाषा लोगों को आपस में जोड़ने का सबसे सरल और जरूरी माध्यम है। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत रही है और इसी भाषा के विभिन्न कालखंडों में अलग-अलग स्वरूपों में हुए वियोजन से हिंदी का विकास हुआ है। संस्कृत भाषा से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंश से अवहट्ट, अवहट्ट से पुरानी हिंदी और पुरानी हिंदी से आधुनिक हिंदी का विकास हुआ है जिसे आज हम बोलते हैं। हालांकि इसे लेकर मतभेद है कि अपभ्रंश से हिंदी का विकास हुआ है या पुरानी हिंदी से। मगर वर्तमान भाषाविज्ञानी इसे अपभ्रंश से ही विकसित हुआ मानते हैं। जब आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी और इस दौरान हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में प्रचलन खूब बढ़ा, तब ये हिंदी भाषा का ही असर था कि उत्तर भारत ही नहीं दक्षिण भारत से भी आने वाले आजादी के नायकों ने इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने की पुरजोर वकालत की। हालांकि हिंदी भाषा को आज तक राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिल सका है।

यदि राष्ट्रभाषा और राजभाषा के अंतर की बात की जाए तो इनमें दो प्रमुख अंतर हैं। एक अंतर इन्हें बोलने वालों की संख्या से है और दूसरा अंतर इनके प्रयोग का है। राष्ट्रभाषा जहां जनसाधारण की भाषा होती है और लोग इससे भावात्मक और सांस्कृतिक रूप से जुड़े होते हैं, तो वहीं राजभाषा का सीमित प्रयोग होता है। राजभाषा का प्रयोग अक्सर सरकारी कार्यालयों और सरकारी कार्मिकों द्वारा किया जाता है। कुछ देश जैसे ब्रिटेन की इंग्लिश, जर्मनी की जर्मन और पाकिस्तान की उर्दू के मामले में राष्ट्रभाषा और राजभाषा की परिकल्पना एक ही है। परंतु बहुभाषी देशों में एक समान स्थिति नहीं है। यहां राष्ट्रभाषा और राजभाषा अलग-अलग होती है।

राष्ट्रभाषा किसी देश को एक करने के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण होती है। आजादी के बाद हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने को लेकर वाद-विवाद होता रहा। गैर-हिंदी राज्यों का तर्क था कि हिंदी उनकी मातृभाषा नहीं है और यदि इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाएगा तो अनुचित होगा। गैर-हिंदी राज्यों के विरोध को देखते हुए **14 सितंबर** 1949 **को** संविधान सभा द्वारा हिंदी को देवनागरी लिपि में राजभाषा के रूप में अपनाया गया। वर्ष 1953 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाए जाने का प्रस्ताव दिया। तब से इस दिन हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। हालांकि आजादी के बाद इसे लेकर तमाम तरह के विवाद हुए और अंततः अंग्रेजी के साथ इसे राजभाषा के रूप में ही अंगीकार किया गया। शुरूआत में तो यह प्रावधान 15 वर्षों के लिए ही था और साथ ही संसद को भी ये शक्ति दी गई थी कि वो अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ा सकता है। वर्ष 1965 में हिंदी को एकमात्र राजभाषा बनाए जाने के समय के पूर्व ही गैर-हिंदी राज्यों का विरोध इस कदर तीव्र हो गया कि अंततः तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को गैर-हिंदी राज्यों को ये आश्वासन देना पड़ा कि उनकी सहमति के बिना हिंदी को एकमात्र राजभाषा नहीं बनाया जाएगा। इसलिए वर्ष 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया गया। वर्ष 1967 में इसे संशोधित किया गया। इसमें किये गए प्रावधानों से गैर-हिंदी राज्यों की तो चिंता खत्म हो गई, लेकिन हिंदी को राष्ट्रीय एकता का प्रमुख तत्व मानने वाले लोगों की चिंताएं बढ़ गई। सरकार ने इन चिंताओं को संबोधित करते हुए त्रिभाषा फार्मूला दिया। इसके अंतर्गत पहली भाषा मातृभाषा होगी जिसमें प्रारंभिक शिक्षा दी जाएगी। दूसरी भाषा गैर हिन्दी भाषियों के लिए हिंदी और हिंदी भाषियों के लिए आठवीं अनुसूची में शामिल कोई भी भाषा होगी। तीसरी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा या अंग्रेजी होगी ताकि शिक्षित भारतीय विश्व से भी आसानी से जुड़ सकें। हालांकि विभिन्न राज्यों की सहमति के अभाव में इसे लागू नहीं किया जा सका। इसी क्रम में वर्ष 1976 में राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 (यथा संशोधित, 1987) लाया गया और इसके अंतर्गत राजभाषा विभाग की स्थापना की गई। यह विभाग ही हिंदी के कार्यान्वयन व प्रचार-प्रसार से संबंधित विभिन्न समारोहों जैसे हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़ा और हिंदी सप्ताह के आयोजन संबंधी दिशा-निर्देशों को जारी करता है। इसी के तत्वाधान में प्रत्येक वर्ष 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस भी मनाया जाता है।

अगर हिंदी भाषा की संवैधानिक स्थिति की बात की जाए तो यह राजभाषा के रूप में संविधान के भाग 5, भाग 6, भाग 17 में समाविष्ट है। भाग 17 में राजभाषा शीर्षक के अंतर्गत 4 अध्याय हैं। इसमें संघ और राज्यों के शासकीय प्रयोजन तथा उच्चतम और उच्च न्यायालयों में

इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष निर्देश दिए गए हैं। भाग 5 के अनुच्छेद 120 में बताया गया है कि संसदीय कामकाज की भाषा हिंदी और अंग्रेजी होगी। यदि किन्हीं सदस्यों को इन्हें बोलने में दिक्कतें हैं, तो वो अध्यक्ष की अनुमति लेकर अपनी भाषा में बात कह सकते हैं। भाग 6 के अंतर्गत अनुच्छेद 210 में राज्य विधानमंडल के लिए भी ऐसे प्रावधान हैं।

अगर हिंदी भाषा की वैश्विक स्थिति की बात की जाए, तो यह विश्व के 150 से अधिक देशों में फैले 2 करोड़ भारतीयों द्वारा बोली जाती है। इसके अलावा 40 देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक हिंदी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। इसके अलावा भारत और फिजी की यह राजभाषा है। ब्रिटिशकाल भारत के दौरान बहुत से श्रमिकों को बंधुआ मजदूर के रूप में भारत से बाहर ले जाया गया था। इनमें से अधिकांश देशों में हिंदी आज एक क्षेत्रीय भाषा है; ये देश हैं- मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिनाद, गुयाना आदि। मॉरीशस में तो विश्व हिंदी सचिवालय की भी स्थापना की गई है। हालांकि संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा अभी भी हिंदी को नहीं मिल सका है, फिर भी इसे बोलने वाले विश्व के कोने-कोने में हैं।

यदि हिंदी भाषा की एक भाषा के तौर पर सामयिक स्थिति का विश्लेषण किया जाए, तो इसके समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। सबसे बड़ी चुनौती तो इसे 'राष्ट्रभाषा की स्वीकार्यता' का न मिलना है। इसके अलावा एक उच्च शिक्षित वर्ग ऐसा भी है जो हिंदी बोलने में शर्म और हिचकिचाहट महसूस करता है। हिंदी भारत की सार्वभौमिक संवाद भाषा भी नहीं है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 41 फीसदी आबादी की ही मातृभाषा हिंदी है। इसके अलावा लगभग 75 फीसदी भारतीयों की दूसरी भाषा हिंदी है जो इसे बोल और समझ सकते हैं। हिंदी भाषा के सामने एक प्रमुख चुनौती यह है कि यह अब तक पूर्णतः रोजगार की भाषा नहीं बन पाई है। आज तमाम मल्टीनेशनल कंपनियों के दैनिक कामकाज से लेकर कार्य संचालन की भाषा अंग्रेजी है। इसके अलावा तमाम क्षेत्रीय राजनीतिक और सामाजिक संगठन भी अपने निहित स्वार्थों के लिए हिंदी का विरोध करते हैं। अभी भी भारत में उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा का माध्यम ज्यादातर अंग्रेजी ही रहता है। हिंदी भाषा की हालत आज ऐसी है कि इसके संबंध में जागरूकता सृजन के लिए विभिन्न सेमिनारों, समारोहों और कार्यक्रमों का सहारा लेना पड़ता है। इंटरनेट के बढ़ते इस्तेमाल ने हिंदी भाषा के भविष्य के संबंध में भी नई राहें दिखाई है। गूगल के अनुसार भारत में अंग्रेजी भाषा में जहां विषयवस्तु निर्माण की रफ्तार 19 फीसदी है, वहीं हिंदी के लिए यह आंकड़ा 94 फीसदी है। इसलिए हिंदी को नई सूचना-प्रौद्योगिकी की जरूरतों के मुताबिक ढाला जाए, तो यह इस भाषा के विकास में बेहद उपयोगी सिद्ध हो सकता है। हमने बहुत प्रगति कर ली है। किंतु हम अभी भी विकासशील के पथ पर ही हैं, विकसित होने के लिए हमें एकजुट होना चाहिए और सबसे पहले तो अपने स्वदेश के प्रति वही प्यार और एहसास जगाना होगा जो पहले था। आज हम सिर्फ शिकायतें करते हैं, करते कुछ भी नहीं। कोई व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं लेते। इसके लिए सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के स्तर पर तो प्रयास किए ही जाने चाहिए, निजी स्तर पर भी लोगों को इसे खूब प्रोत्साहित करना होगा। इसके अलावा हिंदी भाषियों को भी गैर-हिंदी भाषियों को खुले दिल से स्वीकार करना होगा। उनकी भाषा-संस्कृति को समझना होगा, तभी वो हिंदी को खुले मन से स्वीकार करने को तैयार होंगे।

"हिंदी हैं हम वतन हैं हिंदुस्तान हमारा"

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 64-68 (2023)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

हिन्दी अनुभाग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

सभी भारतीय भाषाओं के लिए पारिभाषिक शब्दावली के विकास के उद्देश्य से महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने एक समिति की संस्तुति के आधार पर, 27 अप्रैल, 1960 को एक स्थायी आयोग के गठन का आदेश दिया जिसके अनुसरण में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड (4) के उपबंधों के अधीन, दिनांक 1 अक्टूबर, 1961 को भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। शब्दावली आयोग का मुख्य कार्य मानक शब्दावली विकसित करना तथा उसका प्रयोग, वितरण एवं प्रचार करना है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली विकसित करने में राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, क्षेत्रीय पाठ्य पुस्तक बोर्डों तथा राज्य अकादमियों के सहयोग से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में संदर्भ ग्रंथों/सामग्री का विकास भी सम्मिलित है।

वर्तमान में वै.त.श.आयोग (CSTT), उच्चत्तर शिक्षा विभाग, भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन कार्यरत है जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विकसित मानक शब्दावली का प्रयोग करते हुए विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों व संदर्भ ग्रंथों के हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशन हेतु 22 राज्य ग्रंथ अकादमियों/राजकीय पाठ्य-पुस्तक मंडलों, विश्वविद्यालय जैसे इकाइयां वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के साथ कार्यरत हैं। अब तक वै.त.श.आयोग द्वारा विभिन्न भाषाओं तथा विषयों के लगभग आठ लाख शब्दों की मानक शब्दावलियों का प्रकाशन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा बड़ी संख्या में पारिभाषिक शब्दालियों, शब्द कोशों, पाठ्य-पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों, त्रैमासिक पत्रिका ('विज्ञान गरिमा सिंधु' तथा 'ज्ञान गरिमा सिंधु'), मोनोग्राफ तथा समान प्रकृति के साहित्य आदि का प्रकाशन किया जाता है। वै.त.श.आयोग द्वारा विभिन्न शासकीय विभागों में प्रयोग की जाने वाली प्रशासनिक शब्दावली भी विकासित की गई है, जिसका प्रयोग बड़े पैमाने पर शासकीय विभागों, संस्थानों, शोध-अनुसंधान प्रयोगशालाओं, स्वायत्त संस्थाओं तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों आदि द्वारा किया जाता है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की मानक शब्दावली को लोकप्रिय बनाने तथा इसके प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए वै.त.श.आयोग निरंतर कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, सम्मेलनों, अभिविन्यास तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी करता रहता है।

आयोग के कर्तव्य और कार्य

समिति की सिफारिशों और उसके बाद जारी किए गए राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (जिसे यहां इसके बाद आयोग अथवा वै.त.श.आ. कहा जाएगा) को मिले अधिदेश के अनुसार आयोग के वर्तमान में कर्तव्य एवं कार्य इस प्रकार हैं :-

हिंदी तथा अन्य सभी भारतीय भाषाओं के लिए वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों का पारिभाषिक संवर्धन करना तथा पारिभाषिक कोशों, शब्द कोशों तथा विश्वकोशों का प्रकाशन करना।

आयोग द्वारा विकसित मानक शब्दावली व परिभाषाओं का छात्रों, अध्यापकों, शोधकर्ताओं, वैज्ञानिक तथा अधिकारियों तक पहुँचना सुनिश्चित करना। कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, अभिविन्यास कार्यक्रमों तथा संगोष्ठियों के माध्यम से उपयोगी फीड बैक प्राप्त करना और शब्दावली में उचित प्रयोग/ आवश्यक अद्यतनीकरण/ संशोधन/ सुधार सुनिश्चित करना।

हिंदी तथा अन्य भाषाओं में तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए वैज्ञानिक व तकनीकी विषयों की संगोष्ठियों/ परिसंवाद कार्यक्रमों व सम्मेलनों को प्रायोजित करना।

राज्य सरकारों, ग्रंथ अकादमियों, विश्वविद्यालय कोशों/ शब्द-संग्रह क्लबों तथा अन्य अभिकरणों के माध्यम से; सभी राज्यों के मध्य समन्वयन स्थापित करते हुए, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली में एकरूपता स्थापित करना।

मानक शब्दावली के प्रयोग तथा लोकप्रियता को बढ़ाने के लिए, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन को प्रोत्साहित करना।

योजनाएं

- अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी अंग्रेजी तकनीकी कोश/ शब्दावली तैयार एवं प्रकाशित करना।
- अंग्रेजी-क्षेत्रीय भाषाओं के तकनीकी कोश/ शब्दावली तैयार करना एवं प्रकाशित करना।
- त्रिभाषा शब्दावली तैयार एवं प्रकाशित करना।
- परिभाषा कोश तैयार एवं प्रकाशित करना।
- शिक्षार्थी शब्दावलियां तैयार एवं प्रकाशित करना।
- विभागीय शब्दावलियां तैयार करना, अनुमोदित/प्रकाशित करना।
- शब्दावलियों का परिशोधन एवं अद्यतनीकरण।
- अखिल भारतीय शब्दावली की पहचान और प्रकाशन।
- निर्मित एवं परिभाषित शब्दों का प्रचार-प्रसार और विवेचनात्मक समीक्षा।
- हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का प्रकाशन।
- पत्रिकाओं का निर्माण एवं प्रकाशन।
- आयोग के प्रकाशनों की बिक्री, वितरण एवं प्रदर्शनियों का आयोजन।

उपरोक्त दी गई योजनाओं का संक्षिप्त विवरण : -

1. अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी तकनीकी शब्दावलियों / शब्द-कोशों का निर्माण : छात्रों, विद्वानों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं, वैज्ञानिकों तथा अन्य व्यक्तियों को जो अपना शैक्षणिक, सांस्थानिक तथा सरकारी काम हिंदी माध्यम से कर रहे हैं, उन्हें मानक तकनीकी शब्दावली की आवश्यकता होती है। हिंदी में ऐसी मानकीकृत शब्दावली न केवल शब्दों को एकरूपता प्रदान करती है, बल्कि विभिन्न राज्यों में शब्दों के प्रयोग में पाई जाने वाली असमानताओं को भी दूर करती है, जिनमें एक ही शब्द के लिए भिन्न-भिन्न पर्यायों का प्रयोग किया जाता है।

2. अंग्रेजी-क्षेत्रीय भाषा तकनीकी शब्दावलियों/शब्द-कोशों का निर्माण : क्षेत्रीय भाषाओं में अध्ययन करने वाले छात्रों और विद्वानों के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में मानक तकनीकी शब्दावली की जरूरत होती है। ऐसी शब्दावलियां शोधकर्ताओं तथा वैज्ञानिकों के लिए भी अत्यधिक उपयोगी होती है। क्षेत्रीय भाषाओं की मानकीकृत शब्दावली राज्यों की विभिन्न भाषाओं में एकरूपता लाने के लिए विषय-क्षेत्र उपलब्ध कराती है।

3. त्रिभाषा तकनीकी शब्दावली / शब्द-कोशों का निर्माण: इन शब्दावलियों में एक अंग्रेजी शब्द के लिए एक हिंदी पर्याय और आधुनिक भारतीय भाषा (भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित) का कोई एक पर्याय दिया जाता है। संबंधित क्षेत्रीय भाषा में हिंदी शब्द का लिप्यंतरण त्रिभाषा-कोश में करने का प्रयास किया जाता है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि देश के सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार जन-साधारण तथा अन्य लक्ष्य समूहों में किया जा रहा है और उस प्रकार यह लोकप्रिय बनती जा रही है।

4. परिभाषा-कोशों का निर्माण : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों को उनकी परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में अच्छी तरह से समझा जा सकता है। अतः आयोग सभी विषयों / क्षेत्रों में परिभाषा-कोशों का निर्माण करता है। सामान्यतः शब्दावली में अंग्रेजी तकनीकी शब्द और हिंदी / क्षेत्रीय भाषा के पर्याय दिए गए होते हैं जबकि परिभाषा-कोश में अंग्रेजी तकनीकी शब्द और उनके हिंदी / क्षेत्रीय भाषा के पर्याय दिए जाते हैं तथा उनकी संकल्पनाओं को कुछ ही वाक्यों में स्पष्ट किया जाता है। अतः परिभाषा-कोश छात्रों, शिक्षकों, शोधकर्ताओं, विद्वानों, वैज्ञानिकों तथा अन्य प्रयोक्ताओं के लिए महत्वपूर्ण और आवश्यक बन गए हैं। इस प्रकार, परिभाषा-कोश शब्दावली निर्माण प्रक्रिया का ही विस्तृत रूप है और इससे शब्दों की बेहतर समझ और उनका प्रयोग सुनिश्चित होता है।

5. स्कूल-स्तर की शब्दावली का निर्माण: यदि किसी व्यक्ति को स्कूल स्तर पर ही हिंदी या क्षेत्रीय भाषा के तकनीकी शब्दों

का ज्ञान कराया जाता है, तो वह उन्हें अच्छी तरह से समझ सकेगा, ग्रहण कर सकेगा और याद रख सकेगा। आयोग, स्कूल स्तर के अनेक विषयवार बृहत् शब्द-संग्रहों तथा परिभाषा-कोशों का निर्माण कर चुका है।

6. विभागीय शब्दावलियों का निर्माण और/या अनुमोदन: अनेक सरकारी विभागों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, वैज्ञानिक संगठनों, बैंकों तथा अन्य एजेंसियों को अपने कार्यालयों / संस्थाओं के लिए तकनीकी शब्दावलियों की जरूरत होती है। आयोग अपने द्वारा निर्धारित प्रक्रिया तथा मानकों के अनुसार शब्दावली का निर्माण करता है या इन संस्थाओं द्वारा तैयार की गई शब्दावली का अनुमोदन करता है ताकि ये एजेंसियां अपने आंतरिक और / या अंतर्विभागीय प्रयोग के लिए अपनी विभागीय शब्दावली प्रकाशित कर सकें। ऐसी एजेंसी अपनी विभागीय शब्दावलियों का प्रकाशन स्वयं या आयोग के साथ संयुक्त रूप से कर सकती है। किसी कार्यालय/ संस्था/ एजेंसी विशेष के अनुरोध पर आयोग उनके प्रयोग के लिए विभागीय शब्दावलियां तैयार कर सकता है और उनका कापीराइट व प्रकाशन अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखते हुए उनका मूल्य निर्धारित कर सकता है। आयोग विभागीय शब्दावली के प्रकाशन के संबंध में अनुरोध करने वाले कार्यालय/ संस्था/ एजेंसी के साथ करार या समझौता कर सकता है या पत्राचार द्वारा शर्तें और निबंधन तय किए जा सकते हैं।

7. शब्दावलियों का परिशोधन एवं अद्यतनीकरण: आयोग समय-समय पर शब्दावलियों और परिभाषा-कोशों की समीक्षा करता है। वैज्ञानिक नवाचारों, प्रौद्योगिकीय क्रांतियों, वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक विकासों के कारण जो नई अभिव्यक्तियां प्रचलन में आ गई हैं, उनसे संबंधित नए उपयुक्त शब्दों को वर्तमान शब्दावलियों में जोड़ दिया जाता है ताकि उनका अद्यतनीकरण किया जा सके। पहले से निर्मित/ परिभाषित शब्दों को भी उचित प्रयोग और आवश्यक संशोधन और सुधार की दृष्टि से अद्यतन किया जाता है। उन शब्दों को हटा दिया जाता है जो अब प्रयोग में नहीं है।

8. अखिल भारतीय शब्दावली की पहचान और प्रकाशन: सभी शिक्षाविदों, भाषा-विज्ञानियों एवं विद्वानों की यह धारणा है कि भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिसमें सभी भाषाओं में परस्पर समरूपता हो ताकि उच्च शिक्षा अनुसंधान तथा सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक ज्ञान के आदान-प्रदान एवं अंतर-भाषायी संप्रेषण में सुविधा रहे। इस प्रयोजन के लिए भारतीय भाषाओं में एक सर्वनिष्ठ एवं समरूप शब्द भंडार होना आवश्यक है। चूंकि देश के विभिन्न राज्यों की भाषाओं में तकनीकी शब्दों के मूलरूप प्रायः एक समान हैं, अतः अनेक शब्दों में आपस में समानता दृष्टिगत होती है। आयोग ऐसे शब्दों की पहचान कर अखिल भारतीय शब्दावलियां प्रकाशित करता है। प्रयोक्ताओं को इन शब्दावालियों का निःशुल्क वितरण किया जाता है।

9. निर्मित एवं परिभाषित शब्दों का प्रचार-प्रसार और उनकी विवेचनात्मक समीक्षा: तकनीकी शब्दावली का तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक उसका व्यापक प्रयोग न किया जाए। शब्दावली के प्रयोग में स्पष्टता और एकरूपता लाने के लिए उसका मानकीकरण ही नहीं बल्कि उसको लोकप्रिय बनाना भी परम आवश्यक है। यह तभी संभव होगा जब समाज के विभिन्न लक्ष्य-समूहों, प्रयोक्ता-समूहों, शिक्षकों, विद्वानों, प्रशिक्षणार्थियों तथा छात्रों आदि के साथ मिलकर निर्मित/परिभाषित शब्दों का प्रचार-प्रसार योजनाबद्ध ढंग से किया जाए, उन पर सक्रिय विचार-विमर्श किया जाए और परस्पर-संवाद सत्रों का आयोजन किया जाए। चूंकि विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों को हिंदी/क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है,अतः उन्हें निर्मित / परिभाषित पर्यायों से परिचित कराए जाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न संस्थाओं के अधिकारियों और लिपिकवर्गीय कर्मचारियों तथा वैज्ञानिकों को तकनीकी शब्दों के प्रयोग मे समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः उन्हें हिंदी तथा अन्य आधुनिक भारतीय (क्षेत्रीय) भाषाओं में उचित रूप से अभिविन्यस्त/ प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। लक्ष्य-समूहों या प्रयोक्ता-समूहों की अनेक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए शब्दावली के प्रचार-प्रसार तथा उसकी विवेचनात्मक समीक्षा के लिए विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

10. हिंदी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तक-निर्माण योजना : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न राज्यों की हिंदी ग्रंथ अकादमियों तथा विश्वविद्यालय प्रकोष्ठों के माध्यम से विभिन्न विषयों पर अप्रत्यक्ष रूप से विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का प्रकाशन करता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के अतिरिक्त किए गए कार्य का अनुवीक्षण और समन्वय करता है। विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तक-निर्माण योजना का क्रियान्वयन हिंदी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तक निर्माण के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की सहायता अनुदान योजना तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की संशोधित योजना 1979 के दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाता है। ये पुस्तकें उच्च शैक्षिक स्तर की होनी चाहिए, साथ ही इनमें हिंदी/ क्षेत्रीय भाषाओं की मानक शब्दावली का समावेश होना चाहिए। इस

योजना के तहत राज्य की ग्रंथ अकादमियों और विश्वविद्यालय प्रकोष्ठों को अनुदान जारी किया जाता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग अपनी ओर से क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित नहीं करता है। बहरहाल, क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम परिवर्तन की सुविधा के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग संबंधित क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए विभिन्न राज्यों के पाठ्य-पुस्तक बोर्डों तथा विश्वविद्यालय प्रकोष्ठों को सीधे या संबंधित राज्य सरकार के माध्यम से अनुदान उपलब्ध कराता है और इन गतिविधियों का अनुवीक्षण करता है।

11. पत्रिकाओं का निर्माण एवं प्रकाशन: आयोग मूल लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए हिंदी में दो त्रैमासिक पत्रिकाएं निकालता है और इस प्रकार छात्रों, विद्वानों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों, पत्रकारों आदि की जरूरतों को पूरा करता है। एक त्रैमासिक पत्रिका का नाम 'ज्ञान गरिमा सिंधु' है जो सामाजिक विज्ञान और मानविकी विषयों से संबंधित है और दूसरी त्रैमासिक पत्रिका का नाम 'विज्ञान गरिमा सिंधु' है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषयों / क्षेत्रों पर निकाली जाती है।

ज्ञान गरिमा सिंधु: 'ज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक पत्रिका है जिसमें मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित लेख प्रकाशित होते हैं। इस पत्रिका का उद्देश्य हिंदी में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों से संबद्ध उपयोगी एवं नवीनतम मूल पाठ प्रदान करना तथा पूरक साहित्य को लोकप्रिय बनाना है। यह पत्रिका मिले-जुले प्रकार की है, जिसमें मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान से संबंधित तकनीकी लेख, शोध लेख, निबंध, मॉडल शब्दावलियां, परिभाषा-कोश, कविताएँ, व्यंग्य चित्र, सूचनाएं, समाचार तथा पुस्तक समीक्षा आदि प्रकाशित की जाती है।

विज्ञान गरिमा सिंधु : 'विज्ञान गरिमा सिंधु' भी एक त्रैमासिक पत्रिका है, जिसमें आधार-विज्ञानों, अनुप्रयुक्त विज्ञानों तथा प्रौद्योगिकी से संबंधित लेख प्रकाशित किए जाते हैं। इस पत्रिका का उद्देश्य हिंदी में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए विज्ञान विषयों से संबंधित उपयोगी तथा नवीनतम मूल पाठ प्रधान तथा पूरक साहित्य को लोकप्रिय बनाना है। यह पत्रिका मिले-जुले प्रकार की है जिसमें वैज्ञानिक लेख, शोध लेख, तकनीकी निबंध, मॉडल शब्दावलियां तथा परिभाषा-कोश, विज्ञान से संबंधित कविताएं और कहानियां, व्यंग्यचित्र व वैज्ञानिक जानकारी, विज्ञान-समाचार, पुस्तक समीक्षाएं आदि प्रकाशित की जाती हैं।

12. प्रकाशनों की बिक्री, वितरण एवं प्रदर्शनियों का आयोजन करना : आयोग के प्रकाशनों की बिक्री के लिए प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली में नियमित बिक्री केंद्र के अतिरिक्त आयोग में अपना नियमित बिक्री केंद्र भी है। प्रदर्शनियों / बैठकों/ कार्यशालाओं के दौरान भी बिक्री केंद्र की व्यवस्था की जाती है।

शब्दावली विकसित करने के सिद्धांत

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत :

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :

- तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे - हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;
- तौल और माप की इकाइयां और भौतिक परिमाण की इकाइयां, जैसे - डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;
- ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए है, जैसे - मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बायॅकाट(कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फारेनहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट) आदि;
- वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;
- स्थिरांक, जैसे π, g आदि;
- ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे - रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, आदि;
- गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे - साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग, आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएंगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों में भी, विशेषत: साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे - सेंटीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे - क, ख, ग या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे- साइन A, कॉस B, आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत: अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता, और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो-

अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों और

संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे - telegraphy/ telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक, आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे - टिकट, सिग्नल, पेंशन, पुलिस ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण - अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. लिंग - हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. संकर शब्द - पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं तथा सुबोधता, उपयोगिता, और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास - कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहां तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक', आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है, परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. हलंत - नए अपनाए गए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. पंचम वर्ण का प्रयोग - पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए, परंतु lens, patent, आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके, लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

स्रोत: वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

ISSN: 09758-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 32: 69 (2023)

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

- लेखक अपनी रचनाएँ भेजते समय लेख के अंत में संदर्भों (अधिकतम 5) का उल्लेख अवश्य करें।
- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग, महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए-4 आकार के कागज पर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिए। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहे एवं कविता तुकान्त हों।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class - वर्ग, Order - गण, Family - कुल, Genus - वंश, Species - प्रजाति, Sub-species - उपजाति, Variety - प्रभेद, Form - रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं प्रजाति का नाम तिरछे (italic) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखांकित (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार-बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में सम्मिलित फोटो-प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नहीं करें।
- रचनाओं में दिए गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनाएँ ही भेजें।
- विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यालयअध्यक्षों से अपेक्षा है कि वे अपने स्तर पर लेखों/कविताओं का मूल्यांकन एवं सम्पादन कर, मुख्यालय को प्रेषित करें।

1

2

1. विश्व पर्यावरण दिवस 2023 के दौरान आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में आयोजित जन जागरूकता रैली;
2. विश्व पर्यावरण दिवस 2023 के दौरान आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में वृक्षारोपण कार्यक्रम।

1. वन महोत्सव 2023 के अवसर पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का विमोचन;
2. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में वन महोत्सव 2023 का आयोजन।

1. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में श्रीमती लीना नंदन, सचिव, भारत सरकार, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के कर कमलों द्वारा प्रकृति पथ का उद्घाटन;
2. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में विश्व आर्द्रभूमि दिवस 2023 का आयोजन।